॥ श्रीहरि: ॥

भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

*भगवत्प्रेम-प्राप्तिके उपाय

सबको भगवान् मानकर सेवा करें। नामदेवजी कुत्तेके पीछे घी लेकर उसको भगवान् मानकर दौड़े तो भगवान् प्रकट हो गये। सबको भगवान् मानकर ऐसे ही सेवा करें तो भगवान्में प्रेम हो जाय।

एकान्तमें भगवान्के सामने रुदन करे, सच्चे दिलसे गद्गद भावसे, विनयभावसे प्रार्थना करे। मैंने जो बहुत-से अपराध किये हैं, पाप किये हैं, उनसे आपकी कृपासे ही छुटकारा होगा।

हर समय यही चाह रखे कि भगवान्में प्रेम कैसे हो। एक रत्ती प्रेमके बदलेमें जीवन देना पड़े तो तैयार रहे—*जो सिर साटे हरि मिलें तो पुनि लीजे दौर। ना जानौं या देरमें ग्राहक आवे और॥* यह बात कबीरदासजी कहते हैं। मैं तो कहता हूँ भगवान् मिलें चाहे न मिलें, एक रत्ती प्रेमकी प्राप्तिके लिये सिर देनेको तैयार रहे। रोज एकान्तमें पहले तो गद्गद वाणीसे गोपियोंकी तरह आवाहन करे। शबरीकी तरह प्रतीक्षा करे, निश्चय रखे कि भगवान् आयेंगे, जैसे शबरीको निश्चय था।

फिर जब मनमें निश्चय हो जाय कि आ गये हैं तो फिर उनसे वार्तालाप करे, 'ध्यानावस्थामें प्रभुसे वार्तालाप' नामक पुस्तककी तरह वार्तालाप करे। फिर उनकी पूजा करे, प्रार्थना करे। आपमें ही हमारा प्रेम रहे। आपका ही चिन्तन बना रहे। चलते, उठते, बैठते, सोते भगवान्के नामका जप, स्वरूपका ध्यान, ये दो बातें कभी न छोड़े, चाहे जो हो जाय।

दो बातनको याद रख जो चाहत कल्यान।
नारायण एक मौतको दूजे श्रीभगवान॥

एक क्षण भी यदि भगवान्को भूल गये और मृत्यु आ गयी तो हमारा तो जीवन ही व्यर्थ चला गया। रुपया क्या काम आयेगा, समय, कुटुम्ब क्या काम आये। रात-दिन रोवे ही रोवे। जबतक भगवान्के दर्शन न होवें, रोता ही रहे।

---

*प्रवचन दिनांक २९। १। ३८ कलकत्ता।

शान्ति चित्तकी एकाग्रतामें है

भगवान्‌की मुझपर दया है, यह बात श्रद्धा-विश्वासपूर्वक मान लेनेसे भगवान्‌की स्मृति अपने-आप हो जायगी। श्रद्धा-विश्वास होते ही भगवत्स्मृति हो जायगी। साधु-महात्माके वचनोंके आधारपर ही श्रद्धा करके यह मान लो कि भगवान्‌की मुझपर बड़ी भारी दया है।

ईश्वरकी भक्तिसे ज्ञान-वैराग्य उत्पन्न होते हैं। भक्ति माता है, ज्ञान, वैराग्य पुत्र हैं। जब मनुष्य ईश्वरकी भक्ति करता है तो संसारसे प्रेम हटता है। इसका नाम वैराग्य है। वैराग्यसे सारे दु:खोंका अभाव होकर परमानन्दकी झलक सामने आती है।

भगवान् कहते हैं—यह संसार सागर है, जंजाल है, आफत है, इस सागरसे भगवान् स्वयं पार करते हैं—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२। ७)

हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

भगवान् कहते हैं—

अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा॥

(गीता १५। ३)

इस अहंता, ममता और वासनारूप अति दृढ़ मूलोंवाले संसाररूप अश्वत्थ वृक्षको दृढ़ वैराग्यरूप शस्त्रद्वारा काट डालो।

हमलोगोंको विषयोंमें जो आनन्द प्रतीत होता है, वहाँ भी जब एक क्षणके लिये हमारा चित्त स्थिर होता है, उसी समय हमें आनन्द मिलता है। अस्थिर चित्तमें आनन्द नहीं होता। जब वैराग्य

होता है, चित्त स्थिर होता है, सूर्योदयके पूर्वका प्रकाश-सा इस समय सामने आ जाता है।

जब वैराग्य होता है, चित्तकी सारी वृत्तियाँ एकत्र हो जाती हैं। शान्ति चित्तकी एकाग्रतामें है। जब चित्तमें वैराग्य होता है, तभी वृत्तियाँ एकत्र होती हैं।

सत्त्व, रज, तम—तीनों गुणोंसे वैराग्य हो जाता है। एक ऐसी चीजको देख लेता है जिसके सामने उसे देवताओंका सुख, ब्रह्मलोकतकका सुख काकविष्ठाके समान लगता है।

सुखका तारतम्य इस प्रकार समझा जा सकता है—

मनुष्यसे १०० गुना सुख राजाको, इस प्रकार १००-१०० गुना करते-करते बृहस्पतिसे १०० गुना सुख ब्रह्माको बताया गया है। यह ब्रह्माका सुख भी पर वैराग्य होनेपर काकविष्ठा-जैसा लगता है जैसे हमलोगोंकी दृष्टि मलसे हट जाती है, उसी प्रकार इस सुखसे भी उपरति हो जाती है। प्रभुके ध्यानका आनन्द अनन्त है, असीम है।

योऽन्तःसुखोऽन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव यः।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोऽधिगच्छति॥

(गीता ५। २४)

जो पुरुष आत्मामें ही सुखवाला है, आत्मामें ही रमण करनेवाला है तथा आत्मामें ही ज्ञानवाला है, वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्माके साथ एकीभावको प्राप्त सांख्ययोगी शान्त ब्रह्मको प्राप्त होता है।

आत्मामें ही सुखवाला, आत्मामें ही रमण करनेवाला, आत्माकी ही सत्ता माननेवाला है, इसका फल परमात्माकी प्राप्ति है। निर्वाण ब्रह्मकी प्राप्तिके बादकी स्थिति कैसी होती है? कोई वेद, महात्मा नहीं बतला सकते। वाणीकी, मनकी वहाँ गति नहीं

है। उसको कोई नहीं बतला सकते। वैराग्यके कारण बाहरके पदार्थोंसे वृत्ति हट जाती है। भीतरी आनन्द तो प्रभुके ध्यानमें है। भीतरमें आराम, भीतरमें क्रीड़ा, प्रभुके साथ रमण होता है। रमण करना, क्रीड़ा करना एक ही बात है। आनन्दमें मुग्ध होता है। भगवान्‌के स्वरूपमें रमण करना है। कामिनीका यहाँतक कि स्वर्गलोककी अप्सराओंका भी सुख क्षणिक, अनित्य एवं एकदेशीय है। भगवान् कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

प्रभुमें अद्भुत रमण है। इन्द्रासनकी तरफ भी नजर नहीं जाती। वह तो जैसे मछली जलमें रमण करती है, वैसे परमात्मामें रमण करता है। ऐसा पुरुष उस ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥

(गीता १८। ५४)

फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियोंमें समभाववाला योगी मेरी परा भक्तिको प्राप्त हो जाता है।

*भगवान् भक्तका योग-क्षेम वहन करते हैं

ज्ञानियोंकी शारीरिक क्रिया जैसे खान, पान, बीमारी आदि प्रारब्ध भोगकी होती है। प्रचार आदिमें ईश्वरकी प्रेरणा या लोगोंकी श्रद्धा और प्रेम हेतु होते हैं। शुकदेवजीको भागवत कहनेकी प्रेरणा लोगोंकी श्रद्धा और प्रेमके कारण हुई।

गौरांग महाप्रभु ईश्वरकी प्रेरणासे कर रहे हैं। धोबीमें न श्रद्धा है, न प्रेम है। वे कहते हैं कपड़ा मैं धोता हूँ तू राम-राम कह। जगाई-मधाई कोड़ा मारते हैं, वे उनका उद्धार कर देते हैं। यह सब ईश्वरका आदेश है, उन लोगोंका श्रद्धा-प्रेम नहीं है। कहीं-कहीं उन लोगोंके पूर्व संस्कारकी बात भी हो सकती है, परन्तु गौरांग महाप्रभु तो ईश्वरकी प्रेरणासे ही कर रहे हैं।

महात्माओंके भी पुत्र-स्त्री, धन, शारीरिक बीमारी आदि तो प्रारब्धसे ही हैं। सभीके तीन तरहसे भोग होते हैं। अनिच्छा, परेच्छासे हुआ भोग तो प्रारब्ध ही है। स्पष्ट प्रारब्धकी बात है। भूकम्प आया दैवेच्छासे आया, कोई छूरी मारकर रुपया ले गया, परेच्छाकी बात हुई। एक लड़केको गोद ले लिया, लाख रुपया दे दिया, उस लड़केके लिये परेच्छासे प्रारब्ध भोग हुआ। एक आदमी मार्गमें जा रहा है रत्न, पारस, मोहरकी थैली मिल गयी, एक आदमीको खेत खोदते समय धन मिल गया। उनको यह सब मिलना अनिच्छा अर्थात् दैवेच्छासे प्रारब्ध भोग हुआ। पहलेके उदाहरण हानिके ये लाभके हुए। अब स्वेच्छा प्रारब्धकी बात

---

*प्रवचन दिनांक २९। १। ३८ गोविन्दभवन, कलकत्ता।

बतायी जाती है। मनमें प्रेरणा होकर क्रिया करनेपर फल होना, चेष्टा होकर धन मिलना, पुत्रादि मिलना स्वेच्छा प्रारब्ध है।

ज्ञानीको क्रियमाणका फल तो होता नहीं है, जो कुछ होता है, वह पूर्वकृत प्रारब्धका ही भोग है।

एक सच्चा ज्ञानी, एक ठग पाखण्डी है। दो जिज्ञासु हैं—एक नकली, एक असली। असली महात्माकी असली जिज्ञासुसे भेंट होनेकी ही देर है, बस काम हो गया। असली पारसकी असली लोहेसे भेंट होते ही सोना बन गया। अगर पारस ठीक नहीं तो भी काम नहीं होता और लोहा न होकर मिट्टीका ढेला हो तो पारस उसे सोना नहीं कर सकता। पारस असली न हो तो चाहे जो चीज उससे भिड़ावे, सोना नहीं होगा। अगर ऐसा होता तो पाखण्डियोंके द्वारा भी लोगोंकी मुक्ति हो जाती।

सच्चे महात्माके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करनी चाहिये। वे दया करके भेंट करा देंगे। पाखण्डीके लिये कहा गया है—

उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

आखिर तो परदाफाश हो ही जाता है। एक बार तो पोल चल जाती है, परन्तु आखिरमें परदाफाश हो ही जाता है। सत्-वस्तु ही टिकेगी। सत्‌को आप रात-दिन पीटते रहो, वह सत् ही रहेगा। महात्मामें कमी भी होती है तो आपत्तियाँ आकर साधकोंको पवित्र कर देती हैं। प्रह्लादको आपत्तियोंने शुद्ध कर दिया। कंचन तपानेसे शुद्ध होता है। ईश्वरकी शरण होनेवाला यदि कहीं धोखा भी खा जाता है तो भगवान् उसे चेत करा देते हैं। एक बार तो धोखा खा सकता है, परन्तु भगवान् उसे सावधान कर देते हैं। हनुमान्‌जीने कालनेमिसे एक बार धोखा खाया, पीछे सावधान हो गये। भगवान् कानून बतलाते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

अर्जुनको आज्ञा देते हैं—

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन।
निर्द्वन्द्वो नित्यसत्त्वस्थो निर्योगक्षेम आत्मवान्॥

(गीता २। ४५)

हे अर्जुन! वेद उपर्युक्त प्रकारसे तीनों गुणोंके कार्यरूप समस्त भोगों एवं उनके साधनोंका प्रतिपादन करनेवाले हैं; इसलिये तू उन भोगों एवं उनके साधनोंमें आसक्तिहीन, हर्ष-शोकादि द्वन्द्वोंसे रहित, नित्यवस्तु परमात्मामें स्थित, योगक्षेमको न चाहनेवाला और स्वाधीन अन्त:करणवाला हो।

भगवान् तो योगक्षेम वहन करते ही हैं, परन्तु योगक्षेम नहीं चाहना और भी बढ़िया बात है। वेदके सकाम उपदेशको पार करनेकी बात कहते हैं—निर्द्वन्द्व हो जा, नित्यसत्त्वस्थ हो जा, निर्योगक्षेम हो जा, स्वाधीन अन्त:करणवाला हो जा।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः॥

(गीता ५। १७)

जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर

अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं।

भगवान्‌के स्वरूपमें स्थित होना यह तो उच्च श्रेणीका ध्यान है। परमात्माको प्राप्त हो जाना यह फल है।

योगक्षेमके दो अर्थ हैं—लौकिक और पारलौकिक

योग—अप्राप्तकी प्राप्ति, क्षेम—प्राप्तकी रक्षा।

लौकिक योग-आवश्यक वस्तुकी प्राप्ति।

पारलौकिक योग—आजतक जिस वस्तुकी प्राप्ति नहीं हुई है उसकी प्राप्ति अर्थात् भगवान्‌के साक्षात् दर्शन। भगवान् कहते हैं कि मैं स्वयं ही अपनी प्राप्ति करा देता हूँ।

पारलौकिक क्षेम—उसके माँगनेपर भी लौकिक वस्तु न देकर उसके साधनकी रक्षा करते हैं। जहाँतक वह पहुँच चुका है, उसकी रक्षा करते हैं। उसे गिरने नहीं देते हैं। देवता तो मनोकामनाके अनुसार चीज दे देते हैं। भगवान् देखते हैं कि बेचारा गिर जायगा। देवताओंको तो उसके लाभ-हानिकी परवाह नहीं है। इसलिये लोग जल्दी लाभके लिये देवताओंका पूजन करते हैं—

काङ्क्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः।
क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा॥

(गीता ४। १२)

इस मनुष्यलोकमें कर्मोंके फलको चाहनेवाले लोग देवताओंका पूजन किया करते हैं; क्योंकि उनको कर्मोंसे उत्पन्न होनेवाली सिद्धि शीघ्र मिल जाती है।

भगवान् तो उसका हित होता है, तभी उस कर्मका फल देते हैं। देवता तो देखते हैं कि जिस प्रयोजनके लिये भक्ति की वही दे देना चाहिये। भगवान् असली प्रयोजन देखते हैं, कहीं-कहीं लौकिक

लाभ भी दे देते हैं, परन्तु पारलौकिक तो देते ही हैं। नारदका विवाह नहीं होने दिया, परन्तु ध्रुवको राज्य भी दिया। योगक्षेमका विषय सैकड़ों उदाहरण देकर भी नहीं समझाया जा सकता है।

महात्मा लोग भी योगक्षेमका जो भाव उनके अन्त:करणमें है, वह प्रकट नहीं कर सकते हैं, क्योंकि जितना अन्त:करणमें है उतना बुद्धिमें नहीं आ सकता, जितना बुद्धिमें आता है उतनेके लिये मनको दृष्टान्त ही नहीं मिलता। वह उतनी रचना नहीं कर सकता, जितनी वह रचना करता है, जितना भाव मनमें है, वह वाणीमें नहीं आ सकता, वाणीके द्वारा जितना कहा जाता है उतना लेखमें नहीं आ सकता। वाणीका कहा हुआ भी पूरा भाव सुननेवाले नहीं पकड़ सकते। जरा-सी कहीं वृत्ति चली गयी तो सुना नहीं, जितना सुना उतना मनने नहीं पकड़ा। मनने पकड़ा उतना बुद्धि नहीं पकड़ सकती, जितना बुद्धिने ग्रहण किया उतना आत्माने धारण नहीं किया। इसलिये बारम्बार सुननेकी आवश्यकता है। असली महात्मा हो और असली जिज्ञासु हो तो तुरन्त बेड़ा पार है।

इस लोकमें सबसे बढ़कर सुहृद् माता है। माँको चाहे जितनी गाली दो, वह नहीं चाहती कि मेरा लड़का मर जाय। इस संसारमें सबसे बढ़कर उदाहरण माँका है। माँ बच्चोंको शिक्षा देकर ऊपर उठाती रहती है। दोनों हाथ पकड़कर ऊपरकी सीढ़ीपर चढ़ाती है। उसको स्वतन्त्रतासे सीढ़ीपर चढ़ना सिखाना चाहती है। बालकको सीढ़ीपर खड़ा कर देती है और हट जाती है। बच्चा जोर लगाता है। नहीं चढ़ सकता तो माँकी तरफ देखता है, माँ सहारा देती है, चढ़ाती है, फिर हट जाती है, परन्तु सम्हाल रखती है कि कहीं गिर न जाय। कोई समय उसका पैर फिसलता है तो पीछेसे झट माँ पकड़ लेती है। ऐसे ही जो साधक

ऊपर चढ़नेकी चेष्टा करते हैं, कभी उसका पाँव फिसलने लगे तो भगवान् पीछेसे सम्हाल लेते हैं। यह भगवान्के योगक्षेमका एक नमूना है।

एक ब्राह्मण थे। वे चार भाई थे। उनके तीन भाई कमाते थे, बड़ा भाई भगवान्की भक्ति करता था। एक बार तीनों भाई बोले कि आपको भी कमाना चाहिये। वह बोला भाई! भगवान् कहते हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९। २२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योग-क्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

वे तीनों भाई बोले, आपका-हमारा निर्वाह नहीं होगा। उसे अलग कर दिया। उसकी स्त्री भी ईश्वरभक्त और पतिव्रता थी। दोनों गुण उसमें थे, धीरे-धीरे उस ब्राह्मणका सब कुछ खतम हो गया। घर, बर्तन, कपड़ा सब कुछ बिक गया। घरमें कुछ न बचा। किरायेका मकान, पराये बर्तन रहे। दो धोती पंडितजीकी, एक धोती स्त्रीकी और एक गीता पंडितजीकी। इतनी ही चीजें बचीं। पंडितजी प्रातः चार बजे गंगा-किनारे जाकर गीताका पाठ और भगवान्का निरन्तर ध्यान किया करते थे। प्रातः चार बजेके गये हुए सायंकाल घर आते थे, रातमें थोड़ी देर स्त्रीसे बात करते थे, फिर सो जाते थे। अब उनके पास कुछ न रहा तो स्त्रीने कहा कि कलका भोजन नहीं है। पंडितजीने कहा ठीक है।

पंडितजीने उस दिन गंगा-किनारे गीता-पाठ करते-करते

गीता ९। २२ के श्लोकपर हड़ताल लगा दी। कहा कि यह श्लोक क्षेपक लगता है, भगवान्‌का होता तो अवश्य सच्चा होता। अब उसको छोड़कर पाठ करने लगे। उधर भगवान्‌के मुँहपर हड़ताल लग गयी। अब भगवान् चले भेंट लेकर, घरपर ब्राह्मणीने लेनेसे इन्कार कर दिया, कहा कि स्वामीकी किसीसे लेनेकी आज्ञा नहीं है। भगवान् बोले मैं उनका शिष्य हूँ। ब्राह्मणी बोली—उनका कोई शिष्य नहीं है। उन्होंने किसीको शिष्य बनाया नहीं। भगवान् बोले—मुझ एकको बनाया है, गुरुजी मुझको जानते हैं। आज सुबह जिसके मुँहपर हड़ताल लगायी वह मैं ही हूँ। इतना कहकर जबरदस्ती सामग्री वहाँ छोड़कर चले गये और कहा कि मैं फिर आकर मिल लूँगा। ब्राह्मण आये, ब्राह्मणीने डरते हुए सारी बात कही। मुँहपर हड़तालकी बात सुनते ही ब्राह्मण जोर-जोरसे रोने लगे। हे नाथ! मैं कैसा पापी हूँ, एक दिन भी उपवास किये बिना ही मैंने आपके मुँहपर हड़ताल लगा दी। स्त्रीको सब बातें बतलायी। भगवान् अपना घोड़ा वहाँ छोड़ गये थे, उसपर बहुत-सा धन रत्न बाँधा हुआ था। ब्राह्मणने कहा बिना भगवान्‌के आये अपने कुछ नहीं खाना-पीना है। राततक भूखे रहे। भगवान्‌ने देखा कि ये नहीं मानते, ब्राह्मण-ब्राह्मणी दोनों भूखे पड़े हैं, भगवान् आ गये। दोनोंके साथ मिलकर भोजन किया, बड़ा आनन्द छा गया। ब्राह्मणने गद्गद होकर प्रार्थना की तथा धन लेनेसे इन्कार किया। भगवान्‌ने समझाया और जबरदस्ती देकर चले गये।

उधर तीनों भाइयोंने उनको अलग निकालनेके बाद सट्टा फाटका करके सब कुछ खो दिया। इन्होंने उदारतासे सबको बाँटना शुरू कर दिया। उन भाइयोंको भी बुलाया, फिर शामिल कर लिया। सब लोग मिलकर भगवान्‌के भजनमें लग गये।

परमगति प्राप्ति की। एक भी ऐसा महापुरुष घरमें होता है, वह सबको पवित्र कर देता है।

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा भाग्यवती च तेन।
अपार संवित्सुखसागरेस्मिँल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेत:॥

(स्कन्दपुराण माहेश्वरखण्ड कुमारिका ५५। १४०)

जिसका चित्त मोक्षमार्गमें आकर परब्रह्म परमात्मामें संलग्न हो सुखके अपार सिन्धुमें निमग्न हो गया है, उसका कुल पवित्र हो गया, उसकी माता कृतार्थ हो गयी तथा उसे पाकर यह सारी पृथ्वी भी सौभाग्यवती हो गयी।

भगवान् लौकिक योगक्षेमका भी वहन करते हैं और साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ करते हैं।

नरसी मेहता पिताके श्राद्धका निमन्त्रण देने गये, उसी दिन उनके भाईके यहाँ भी श्राद्ध था, क्योंकि पिता तो एक ही थे। पुरोहितजीने न्योता स्वीकार नहीं किया, बोले कि तुम्हारे भाईके यहाँ जायेंगे। नरसीजीके भाई बिरादरीवाले गाँवके ब्राह्मण सब उनकी इज्जत लेना चाहते ही थे, सब-के-सब भोजन करनेको तैयार हो गये। नरसीजी घी लाने गये, मोदीने कहा भजन सुनाओ, नरसीजी मस्त हो गये। अब कौन क्यों आया है किसको सुध हो। उधर भगवान्को फिकर पड़ी। पुरोहितके यहाँ नरसीका वेष बनाकर गये, बोले श्राद्ध कराओ। उन्होंने कहा तुम क्या दोगे, तुम्हारे भाईके यहाँ जायेंगे। नरसी बने भगवान्ने एक गरीब ब्राह्मणको सब विद्या देकर उसके द्वारा श्राद्धकर्म करवाकर सारे गाँवको भोजन करा दिया। असली नरसी तो तीन बजेतक भजन ही गाते रह गये। भगवान्ने सब कुछ कर लिया। योग-क्षेम वहन करता हूँ, बोझा ढोता हूँ, पशु बन

जाता हूँ, उसमें मुझे बड़ा आनन्द आता है।

निर्योगक्षेम आत्मवान् प्रह्लाद भगवान्‌को बुलाते नहीं, भगवान् जबरदस्ती आते हैं। वे तो शरण थे। पिता कहता है आज तुम्हें तलवारसे काट डालता हूँ, तुम्हारा भगवान् कहाँ है, खम्भमें ही है तो उसे भी तलवारसे काट डालूँगा। इतनेमें ही खम्भेमेंसे आवाज आयी, खम्भके दो टुकड़े हो गये। एक अद्भुत चीज निकल आयी। बड़ा भयंकर रूप था। भगवान् बड़े क्रोधित थे, सब लोग काँपने लगे। भगवान् कैसे शान्त हों, प्रह्लादको कहा, वह भगवान्‌के पास गया। भगवान् शान्त हो गये। पशु बने थे, इसलिये उसको प्रेमसे चाटने लगे। प्रह्लादके आनन्दका क्या ठिकाना। भगवान् वर देने लगे, प्रह्लाद बोले—आप मुझे ठगते हैं क्या मैं बनिया हूँ? मैं तो आपका भक्त हूँ? यह तो भागवत और विष्णुपुराणकी बात है। अब एक महात्माद्वारा सुनी हुई बात कहता हूँ। अपने तो प्रयोजन लेना है। भगवान् कहते हैं—तुम निर्योगक्षेम होओ, मुझे क्षमा करो, मैंने आनेमें विलम्ब किया। भगवान् बोले—कुछ माँगो, प्रह्लादने माँगना नहीं चाहा। भगवान्‌ने आग्रह किया तो प्रह्लाद बोले कि मेरे पिताने आपका अपराध किया, आपकी भक्तिमें बाधा दी, इसका अपराध क्षमा करें। भगवान् बोले—तुम्हारे-जैसा जिसका पुत्र हो उसके कल्याणमें तो शंका ही क्या है? तुम्हारी तो इक्कीस पीढ़ियोंका उद्धार हो जायगा। सात पहलेकी, सात वर्तमानकी और सात आगे होनेवाली, भगवान्‌ने और माँगनेके लिये अत्यन्त आग्रह किया। प्रह्लाद बोले—सारे संसारका उद्धार हो जाय। भगवान् बोले इनके कर्म कौन भुगतेगा? प्रह्लाद बोले—सबका दुःख मुझे भुगता दें। भगवान् बोले—यह कैसे हो सकता है? प्रह्लाद बोले—माफ कर

दें, तब भगवान् बोले—यह कैसे हो? हाँ जो तुम्हारे दर्शन, स्पर्श, भाषणमें आयेगा उसका उद्धार हो सकता है। प्रह्लाद बोले—आपकी इच्छा।

बोझा ढोना—भक्तोंके लिये कुली बननेमें भगवान्‌को बड़ा आनन्द आता है। *'आप उठाइ गाँठड़ी निज भक्तोंके कारणे।'*

अनन्यभक्ति—न तो किसी दूसरेका चिन्तन करना, न किसी अन्यसे प्रेम करना, न किसीकी इच्छा करनी।

जो निर्योगक्षेम होते हैं, उनकी तो जहाँ चरणधूलि पड़ती है, भगवान् उसे मस्तकपर धारण करते हैं।

जो अड़ जायेंगे, कहेंगे कि रख तेरी मुक्ति, तब भगवान्‌को सारे संसारका कल्याण करना ही पड़ेगा। आजतक अड़नेवाला कोई नहीं हुआ, नहीं तो सबका कल्याण हो ही जाता। अपने तो अड़ जाना है।

शान्ति मिलनेके उपाय

आपकी आज्ञा है कि शान्ति कैसे मिले, इस विषयपर कहा जाय। सब कोई सुख चाहते हैं, कोई अशान्ति नहीं चाहता। विचार करना है कि शान्ति कैसे मिले। शान्तिके पाँच उपाय हैं, उनमें एक भी कर ले तो शान्ति मिल जायगी। जो जिसके ठीक पड़े, सहज पड़े, वही कर सकता है।

(१) संसारके विषयोंसे वैराग्य उत्पन्न कर लेना। भगवान् कहते हैं—

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर, अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

जो कामना, ममता, परवाह, अहंकारको त्यागता है, वह शान्तिको प्राप्त होता है। संसारके सारे पदार्थ अनित्य हैं, क्षणभंगुर हैं, दुःखरूप हैं, इस प्रकारके भावसे वैराग्य हो सकता है। वैराग्यवान् पुरुषोंका संग करनेसे वैराग्य हो सकता है।

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन्।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति॥

(गीता २। ६४)

परंतु अपने अधीन किये हुए अन्तःकरणवाला साधक अपने वशमें की हुई, राग-द्वेषसे रहित इन्द्रियोंद्वारा विषयोंमें विचरण करता हुआ अन्तःकरणकी प्रसन्नताको प्राप्त होता है।

प्रवचन दिनांक २९। १। ३८ सायंकाल, मैदान, कलकत्ता।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

(गीता ३। ६)

जो मूढबुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियोंको हठपूर्वक ऊपरसे रोककर मनसे उन इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है।

जो बाहरसे विषयोंको त्याग देता है, मनसे विषयोंका चिन्तन करता है, वह दम्भी है, पाखण्डी है।

यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते॥

(गीता ३। ७)

हे अर्जुन! जो पुरुष मनसे इन्द्रियोंको वशमें करके अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियोंद्वारा कर्मयोगका आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

यह शान्ति त्यागसे मिलती है। '**त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्।**' (गीता १२। १२) भीतरका त्याग होना चाहिये, बाहरका नहीं। बाहरके त्यागसे विरोध नहीं है पर भीतरका त्यागी श्रेष्ठ है। बाहर-भीतर दोनोंका है तो अच्छा है।

(२) श्रद्धासे शान्ति मिलती है। भगवान् कहते हैं—ईश्वर-महात्मा-परलोक जिसमें भी श्रद्धा हो उससे शान्ति मिल सकती है।

श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति॥

(गीता ४। ३९)

जितेन्द्रिय, साधनपरायण और श्रद्धावान् मनुष्य ज्ञानको प्राप्त होता है तथा ज्ञानको प्राप्त होकर वह बिना विलम्बके—तत्काल ही भगवत्प्राप्तिरूप परम शान्तिको प्राप्त हो जाता है।

बिना श्रद्धा कहीं शान्ति नहीं है।

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

(गीता २। ६६)

न जीते हुए मन और इन्द्रियोंवाले पुरुषमें निश्चयात्मिका बुद्धि नहीं होती और उस अयुक्त मनुष्यके अन्तःकरणमें भावना भी नहीं होती तथा भावनाहीन मनुष्यको शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित मनुष्यको सुख कैसे मिल सकता है?

जहाँ श्रद्धा नहीं है वहाँ शान्ति नहीं है और जहाँ शान्ति नहीं है वहाँ सुख नहीं है। वहाँ त्यागसे शान्ति बतायी, यहाँ ज्ञानसे शान्ति बतलायी। तत्परतासे ही श्रद्धा जानी जाती है। मनुष्य जिस कार्यके लिये जितना प्रयत्न करता है, उतनी ही उसकी उस कार्यमें श्रद्धा है। श्रद्धासे तत्परता होती है, तत्परतासे इन्द्रियोंका निग्रह होता है उसीसे शान्ति मिलती है।

(३) भगवदर्थ कर्मसे शान्ति—

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।
अयुक्तः कामकारेण फले सक्तो निबध्यते॥

(गीता ५। १२)

कर्मयोगी कर्मोंके फलका त्याग करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है और सकामपुरुष कामनाकी प्रेरणासे फलमें आसक्त होकर बँधता है।

यहाँ भगवदर्थ कर्मोंके करनेसे शान्ति बतलायी गयी है।

(४) भगवान्‌की भक्तिसे शान्ति—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥

(गीता १८। ६२)

हे भारत! तू सब प्रकारसे उस परमेश्वरकी ही शरणमें जा।

उस परमात्माकी कृपासे ही तू परम शान्तिको तथा सनातन परम धामको प्राप्त होगा।

भगवान्‌की शरणसे भी शान्ति मिलती है।

जो अपने लिये वैराग्य बढ़िया समझता है उसे वैराग्यसे, जो कर्मफलका त्याग कर काम करना चाहता है उसे कर्म करनेसे, किसीको ज्ञानसे—किसीको भक्तिसे शान्ति मिलती है। भगवान्‌के चिन्तनसे ही शान्ति है। चिन्तन न हो तो नाम-उच्चारणसे ही शान्ति मिलती है। नामका जप, स्वरूपका ध्यान यह तो शरणागतिके ही अंग हैं। एक ऐसी बात है जो इनके बिना भी शान्ति मिलती है।

(५) महात्माओंकी शरणसे भी शान्ति मिलती है।

ध्यानेनात्मनि पश्यन्ति केचिदात्मानमात्मना।
अन्ये साङ्ख्येन योगेन कर्मयोगेन चापरे॥

(गीता १३। २४)

उस परमात्माको कितने ही मनुष्य तो शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धिसे ध्यानके द्वारा हृदयमें देखते हैं; अन्य कितने ही ज्ञानयोगके द्वारा और दूसरे कितने ही कर्मयोगके द्वारा देखते हैं अर्थात् प्राप्त करते हैं।

अन्ये त्वेवमजानन्तः श्रुत्वान्येभ्य उपासते।
तेऽपि चातितरन्त्येव मृत्युं श्रुतिपरायणाः॥

(गीता १३। २५)

परन्तु इनसे दूसरे अर्थात् जो मन्दबुद्धिवाले पुरुष हैं, वे इस प्रकार न जानते हुए दूसरोंसे अर्थात् तत्त्वके जाननेवाले पुरुषोंसे सुनकर ही तदनुसार उपासना करते हैं और वे श्रवणपरायण पुरुष भी मृत्युरूप संसारसागरको निःसन्देह तर जाते हैं।

न जाननेवाला मूढ, महात्माओंके पास जाकर उनकी आज्ञाका पालन करनेसे परमशान्तिको प्राप्त होता है। ज्ञानके प्रसंगमें भी भगवान् कहते हैं—

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

(गीता ४। ३४)

उस ज्ञानको तू तत्त्वदर्शी ज्ञानियोंके पास जाकर समझ, उनको भलीभाँति दण्डवत् प्रणाम करनेसे, उनकी सेवा करनेसे और कपट छोड़कर सरलतापूर्वक प्रश्न करनेसे वे परमात्मतत्त्वको भलीभाँति जाननेवाले ज्ञानी महात्मा तुझे उस तत्त्वज्ञानका उपदेश करेंगे।

इस ज्ञानको जानो। सेवा करो, सरलतासे प्रश्नोत्तर करके जानो। उस ज्ञानसे तुम्हारा मोह नष्ट हो जायगा। फलस्वरूप सारे संसारमें मुझ परमेश्वरको देखोगे।

(६) जिससे यह सब भी न हो, उसके लिये भगवान् उपाय बतलाते हैं—

सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति।

(गीता ५। २९)

सभी प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, मुझे ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

ऐसा जो मान लेता है कि प्रभुकी सबपर पूर्ण दया है। मुझपर भी है। उसके आनन्दका पार नहीं रहता। उसे शान्ति मिलती ही है। कैसे? एक भाईपर ऋण है, दु:खी है, मारा-मारा फिरता है। उसे एक भाईने एक उदार, धनीका पता दिया। इतना जाननेपर ही उसे शान्ति मिल जाती है तो फिर ऐसे सुहृद्, सबके प्रेमी, सबपर दया करनेवाले भगवान् मौजूद हैं, उसके आनन्दका क्या ठिकाना।

अंग्रेजोंके राज्यमें वाइसरायकी जिसपर कृपा हो उसे कितना आनन्द होता था। राजाकी कृपा माननेवाले क्षत्रिय बालकका दृष्टांत* राजाने राज्यसे उसका प्रबन्ध किया, युवराज पदतक दे दिया।

---
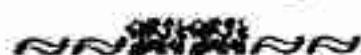
* यह कहानी उपदेशप्रद कहानियाँ नामक पुस्तकमें है।

प्रभु-प्राप्तिके विविध उपाय

समय हाथसे निकल गया तो फिर प्राप्त नहीं होगा। सच्ची वस्तु खरीदनी चाहिये जो हमारे साथमें जाय।

उत्साह होनेका उपाय—एक क्षणका मूल्य लाख रुपयेसे भी अधिक समझे। मनुष्य-जीवन ही अमूल्य है। देखो यहाँ पहाड़में छोटे-छोटे जीव-जन्तु लाखों हैं। सोचो तो सही, संसारमें कितने जीव-जन्तु हैं? उनका क्या पाप होगा? मालूम पड़ता है कि मनुष्य-जीवन जो अमूल्य था, उसे पाकर भी उनकी तुच्छ वृत्ति अवश्य रही होगी। हम भी यदि मनुष्य-शरीरको छोड़कर नीची योनियोंमें गये तो हमारा कुछ भी जोर नहीं चल सकता।

वे जन्तु हमको उपदेश करते हैं कि हम भी जीव हैं, तुम भी हो। हमारी मनुष्य-जीवनमें तुच्छ करनी रही, लेकिन तुम अब तुच्छ करनी मत करना, अन्यथा हमारी तरह दुःख भोगना पड़ेगा। हमको सोचना चाहिये कि हमारा मनुष्य-जीवन बड़ा अमूल्य है। जिस प्रकार बने इसको अमूल्य कार्यमें ही बिताना चाहिये। यही उत्साह होनेका सर्वश्रेष्ठ उपाय हो सकता है।

समय हाथसे निकल गया तो फिर प्राप्त नहीं होगा। मृत्युको समीप देखनेसे भी अधिक लाभ होगा। हमको संसारसे शीघ्र चले जाना है, इसलिये चेतना चाहिये। हमारे साथमें कोई नहीं जायगा। इनके बदलेमें सच्ची वस्तु खरीदनी चाहिये, नहीं तो यह धन, जनके संस्कार हमारे साथमें जायेंगे। यह मिथ्या वस्तु है, इसलिये सत्-कर्म जो असल वस्तु है, वह खरीदना चाहिये, धन, जन नष्ट

भी हो जायँगे और रहे भी तो साथ नहीं जायँगे। सत् वस्तु नष्ट भी नहीं होगी और साथमें भी जायगी। शास्त्र और महापुरुषोंपर विश्वास रखना चाहिये। श्रद्धासे अधिक लाभ होता है।

संसारसे वैराग्य करनेसे भगवान्‌में शीघ्र मन लगता है। संसारी वस्तुको ठुकरा दो, कुछ मत समझो। जिस प्रकार मल-मूत्र त्यागते हो, इस प्रकार त्याग दो, इससे आनन्द अधिक होगा। संसारमें मन भटकता है, इससे परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र नहीं होती। गुण धारण करना चाहिये। एक ही गुण धारण करनेसे साधन तेज होकर प्रभुकी प्राप्ति हो सकती है।

१. श्रद्धा—शास्त्र और महात्मापर श्रद्धा होनेसे तथा जो करेंगे उसका फल अवश्य मिलता है, ऐसा विश्वास होनेपर शीघ्र श्रद्धा होकर प्रभुकी प्राप्ति हो सकती है।

२. प्रेम—यदि भगवान्‌में प्रेम होवे तो बेड़ा पार है, परन्तु वह भी श्रद्धासे होता है और अनन्य प्रेमीकी तो बात ही क्या है।

३. वैराग्य—संसारके पदार्थोंमें वैराग्य हो जाना, आसक्तिका नाश हो जाना तथा उपराम वृत्ति होनेसे साधन तेज होता है। हमको अधिक अभ्यास संसारका हो गया है, इसीलिये विक्षेप, आलस्य यह आड़ आ जाती है। संसारी पदार्थोंमें वैराग्य होगा, उपरामता होगी तो साधन तेज होकर परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र होगी। वैराग्यमें संसारी भोगोंमें राग नहीं होता। उपरामताका तात्पर्य संसारी भोगोंमें वृत्ति नहीं होना है।

४. समता—हमारा सबमें, प्राणीमात्रमें समभाव होना चाहिये, सबसे समव्यवहार करना चाहिये, यह साक्षात् मुक्ति देनेवाला है।

५. सत्संग—इससे शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति होती है, यह एक बड़ा उत्तम धारण करनेयोग्य गुण है।

६. समय—हर समय बस समयका खयाल रखे, यह भी लाभकी वस्तु है। व्यर्थ समय नहीं बिताना चाहिये।

७. दया—सब जीवोंपर दया करनी चाहिये। इस भावकी जागृति होनेपर वह सबको आराम ही पहुँचाता है और उसका कल्याण भी शीघ्र होता है।

८. भगवान्‌की दया हमेशा समझनेसे साधन तेज होता है।

९. सत्य—यह एक महत्त्वकी बात है, सत्यपालनसे शीघ्र कल्याण होता है।

१०. मन वशमें हो जाय तो कार्यसिद्धि शीघ्र होती है। कहा है—

कबिरा मन तो एक है भावे तहाँ लगाय।
भावे हरिकी भक्ति कर भावे विषय लगाय॥

११. चित्तमें शान्ति रखनी चाहिये।

१२. मन-इन्द्रियाँ स्वाधीन रहें, इनका संयम रखना चाहिये।

१३. उत्साह—उत्साह ऐसा रखना चाहिये कि कुछ भी असम्भव नहीं है।

१४. तत्परता—कोई भी काम करनेमें हमेशा तत्परता रहे।

१५. उत्तम नीयत यानी कार्य-कुशलता, यह भी परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र कराती है।

१६. सहज—उन परमात्माकी प्राप्तिको सहज मानना चाहिये। कठिन नहीं है। यह एक गुण ऐसा है कि इससे शीघ्र साधन सध जाता है।

१७. निर्भयता—इसके होनेसे भी उत्साह होता है।

१८. ज्ञान-परमात्मविषयक ज्ञान, समझनेकी शक्ति।

१९. सूक्ष्म बुद्धि—सूक्ष्म और शुद्ध बुद्धिसे भी साधन तेज

होकर परमात्माकी प्राप्ति शीघ्र होती है। मनुष्य-शरीरमें आकर जो कार्य, जो उद्देश्य था, उसको प्राणपणसे पूर्ण करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

२०. रात्रिको सोते समय भगवान्‌का भजन-ध्यान या गीता-पाठ, विष्णुसहस्रनामका पाठ करके सोनेसे अच्छा लाभ होता है। भगवत्‌विषयक उत्तम स्वप्न आते हैं और बड़ा आनन्द आता है।

२१. भजन-ध्यान त्यागना नहीं चाहिये।

२२. मनका साक्षी रहे। कुकर्मपर मन जाय तो उसको धिक्कार देवे और समझावे कि अरे मूर्ख! विचार तो कर, यदि ऐसे समयमें तुम्हारा शरीरसे सम्बन्ध छूट जाता, मृत्यु हो जाती तो क्या हाल होता, कौन गति मिलती, इसलिये मूर्ख अभी भी चेत जा और भजन कर।

२३. जहाँ मन जाय सावधानी रखे और परमात्मामें लगावे।

इन उपायोंमेंसे यदि एक भी धारण कर आचरण करनेमें लगे तो धीरे-धीरे सब उपाय अपने-आप आ जाते हैं और शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

त्यागकी महत्ता

त्याग एक उत्तम साधन है। इससे हमारा लोक-परलोक सुधर जाता है, किन्तु जो दोष हमारेमें जन्म-जन्मान्तरोंसे हैं, उनके त्यागसे लोक और परलोकके दु:खोंसे बच सकते हैं और उसका फल भी प्रत्यक्ष मिलेगा। जिस एकके त्यागसे ही सब प्रकारका लाभ होगा और कल्याण भी होगा, उसका नाम आसक्ति है। इसीको राग, स्नेह, संसारी प्रेम कहते हैं। भोगोंमें हमारा जो आकर्षण है, इससे कामना पैदा होती है और फिर कामना पूरी न होनेसे क्रोध और क्रोधसे सर्वनाश हो जाता है।

ध्यायतो विषयान् पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

(गीता २। ६२)

विषयोंका चिन्तन करनेवाले पुरुषकी उन विषयोंमें आसक्ति हो जाती है, आसक्तिसे उन विषयोंकी कामना उत्पन्न होती है और कामनामें विघ्न पड़नेसे क्रोध उत्पन्न होता है।

इसलिये इस बुरी आसक्तिको त्यागकर परमात्मामें आसक्ति ग्रहण करनी चाहिये। वही आसक्ति जो भोगोंमें लगायी है उसको परमात्मामें लगा दो। यह अत्यन्त सरल है, इसका सब पालन कर सकते हैं, आसक्तिके कारण ही साधक आदिका पतन होता है।

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

(गीता २। ५७)

जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तुको प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है।

माताओं-बहनोंको गहने-कपड़े आदिसे आसक्ति हटाकर

भगवान्‌में लगानी चाहिये। जो परमात्माको बड़ा समझ लेता है, वह भला दूसरे पदार्थ क्यों ग्रहण करेगा।

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

भगवान् कहते हैं वह मेरा ही भक्त होता है, विषयोंका नहीं। यह बात तो युक्तिसंगत ही है कि परमात्मासे प्रेम करनेपर वे मिलते हैं। भगवान् कहते हैं मुझे अनन्य भक्तिसे भजो। अपने-आपको अर्पण करके सुखी हो जाओ, किन्तु अर्पण कहनेमात्रका नहीं होना चाहिये। अर्पण यदि स्वार्थसिद्धिके लिये, स्वाद, शौक, विलासिता आदिके लिये हो तो हम दोषी होंगे, किन्तु भगवान्‌के लिये हो तो उनकी आज्ञापालन करना चाहिये।

हमको खाने, पीने, स्त्री, पुत्रादिका त्याग नहीं करना है, किन्तु इनमें जो हमारी आसक्ति है उसको त्यागना है। भोजन शरीर-निर्वाहके लिये ही हो, स्वादके लिये नहीं। कपड़े आदि शरीरकी लज्जा बचानेके लिये ही हों। किसीने फूलमाला तुम्हारे गलेमें डाली तो उसका मान रखनेको उस समय पहन लो, किन्तु आसक्ति मत रखो।

भगवान्‌की भक्तिके लिये शरीर-निर्वाह करना चाहिये। भगवान् कहते हैं जो भक्तिसहित देता है उस प्यारे प्रेमीका दिया हुआ मैं प्रेमसे खाता हूँ। दुनियामें किसी भी जीवसे घृणा नहीं करनी चाहिये। प्रेमपूर्वक सेवा करनेसे भगवान्‌में प्रेम होता है। संसारी भोगोंका प्रेम नाशवान् है और परमात्माका प्रेम अटल है। इसलिये उन प्रेमी प्रभुमें प्रेम करना हमारा सबका कर्तव्य है।
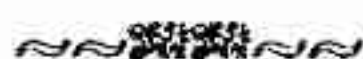
भगवान्‌में श्रद्धाकी आवश्यकता

ऐसा सुख चाहना चाहिये जिसका नाश न हो और नाश केवल परमात्माका ही नहीं होता। प्रत्येक वस्तुको ठोक-बजाकर देख लो, यदि उसका कल नाश होनेवाला हो तो आज ही उसका त्याग कर देना चाहिये।

संसारके जितने पदार्थ दीखते हैं, सब नष्ट होनेवाले हैं। संसारी पदार्थ देखनेमें जड़ हैं, पर उनके पीछे चलानेवाला है, वही परमात्मा है, वह बड़ा बुद्धिमान् है। दुनियाकी सारी बुद्धिमानी उसके अंशमात्रमें है। वह दूर रहकर भी बैठा-बैठा ब्रह्माण्डमें चक्र चला रहा है और वह सर्वज्ञ, सर्वव्यापी है, यह प्रत्यक्ष है। संसारमें जो सुख-दुःख, पाप-पुण्य करनेवाले हैं, प्रभु उनको चुपचाप देखकर उनके कर्मोंके अनुसार भुगता देते हैं, वह प्रभु बड़े गम्भीर हैं, उनको कोई गाली भी दे तो भी वे उसका भला ही सोचते हैं। ऐसे प्रभुपर हमको विश्वास करना ही चाहिये।

यहाँ जो दुनियाका धन जुल्म कर-करके एकत्र करता है, दुनियाके लोग उसके लिये कहते हैं कि यह अनीति करता है, कोई उसको अच्छी दृष्टिसे नहीं देखते—

उघरहिं अंत न होइ निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥

जिसने संसारमें अनीति की, उसका सर्वनाश हो गया। यदि आज दुनियामें ईश्वर नहीं होते तो मनुष्यको मनुष्य खा जाते।

देखिये जिस समय रामचन्द्रजीने ऋषियोंकी पड़ी हुई हड्डियाँ देखी तो प्रतिज्ञा की *'निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह'* लोग कहते हैं विभीषण तो राक्षस था, वह क्यों बच गया? भगवान्‌ने उसका राक्षसी स्वभाव नष्ट कर दिया था और इसलिये उनकी प्रतिज्ञा पूर्ण हुई।

आज हमको देशमें अत्याचार दीख रहा है, लाखों गायें कट रही हैं, देश दरिद्र हो रहा है, किन्तु प्रभुने अभी आवश्यकता नहीं

समझी, इसलिये अवतार नहीं लिया। यदि कहो कि उनके शीघ्र आनेके लिये हम राक्षस बन जायँ, हमारी इच्छा तो उनको प्राप्त करना है। इसके लिये राक्षसी भाव क्यों रखना चाहिये। ईश्वर सबका रक्षक है, फिर क्यों भय किया जाय। विश्वास करना चाहिये। एक ही उपाय बड़ा सीधा है, किन्तु करना तो पड़ेगा ही। श्रद्धा होना आवश्यक है। एकान्तमें बैठकर अपने अवगुण देखकर दिल खोलकर रोना चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवन्! आपके बिना मेरा उद्धार नहीं होगा। दया करो, दया करो, इस प्रकार पाँच मिनट करोगे तो एक मिनट तो रोना आ ही जायगा। ज्ञानमार्गवाले भी विपत्ति पड़नेपर कहते हैं हे नाथ! हे नाथ! बचाओ। भक्तिमार्गमें रोना सुगम भी है, अनुकूल भी पड़ता है। कोई मार्ग हो श्रद्धा सबमें होनी चाहिये। गीतामें भक्तिमार्गकी प्रधानता है। भक्तिमार्गमें मान-बड़ाई सबसे नीची वस्तु है, इससे शीघ्र पतन होता है। '**सर्वधर्मान् परित्यज्य**' केवल अर्जुनके लिये ही नहीं, बल्कि सबके लिये है। अर्जुनने ठेका थोड़े ही ले रखा है।

ज्ञानके साधनमें भी देहाभिमानके त्याग होनेसे मुक्ति होती है। गीतामें भगवान् कहते हैं—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम् ।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥

(गीता १२।५)

उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्त चित्तवाले पुरुषोंके साधनमें परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियोंके द्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।

देहाभिमान-त्यागसे बेड़ा पार है और त्यागके बाद ग्रहण करनेको यही है कि एक विज्ञानानन्दघन परमात्माके सिवा और कुछ नहीं है।

सभी मार्गोंमें वैराग्यकी आवश्यकता

बिना वैराग्य भक्ति, ज्ञान, ध्यान, योग आदिकी सिद्धि नहीं होती। सबसे बढ़कर वैराग्य ही है। वैराग्यवान् पुरुष शुभाशुभकी प्राप्तिमें, निन्दा-स्तुतिमें सर्वदा प्रसन्न रहता है और भगवान्ने उसीकी बुद्धि स्थिर कही है। वैराग्यवान्का शीघ्र कल्याण होता है। वैराग्य हठसे त्यागद्वारा भी हो जाता है। हठपूर्वक त्याग इस प्रकार करें कि जो भोग पदार्थ प्यारा लगे, अनुकूल पड़े, उसका हठपूर्वक सेवन न करनेसे आसक्ति मिट जाती है और आसक्ति मिटते ही वैराग्य हो जाता है। कोई भी आश्रम हो, किन्तु बिना वैराग्यके कहीं भी कल्याण नहीं है। वैराग्यवान् पुरुषोंके संगसे भी वैराग्य होता है, नामजपके अभ्याससे भी वैराग्य होता है। राग ही जन्म-मृत्युका कारण है। कामना, इच्छा, तृष्णा, वासना आदि सब आसक्तिके ही पर्यायवाची शब्द हैं। यदि वैराग्य नहीं तो सब मिट्टी है। वैराग्य सारे साधनोंका राजा है। बेपरवाह रहे।

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

(गीता २। ७०)

जैसे नाना नदियोंके जल जब सब ओरसे परिपूर्ण, अचल प्रतिष्ठावाले समुद्रमें उसको विचलित न करते हुए ही समा जाते हैं, वैसे ही सब भोग जिस स्थितप्रज्ञ पुरुषमें किसी प्रकारका विकार उत्पन्न किये बिना ही समा जाते हैं, वही पुरुष परम

शान्तिको प्राप्त होता है, भोगोंको चाहनेवाला नहीं।

विहाय कामान् यः सर्वान् पुमांश्चरति निःस्पृहः।
निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥

(गीता २। ७१)

जो पुरुष सम्पूर्ण कामनाओंको त्यागकर ममतारहित, अहङ्काररहित और स्पृहारहित हुआ विचरता है, वही शान्तिको प्राप्त होता है अर्थात् वह शान्तिको प्राप्त है।

वैराग्यवान्‌की सात्त्विक क्रिया लोकसंग्रहमें काम आती है, उसको किसी प्रकारका प्रयोजन नहीं रहता। प्रत्येकको आसक्ति-अहंकारका त्याग करना चाहिये।

खटके वाली वस्तुको जिसने दीनी छाड़।
चाहे रहो उजाड़में चाहे बीच बजार॥

जहाँ रघुनाथजी हैं वहीं अवध है, इसी प्रकार जहाँ वैराग्यवान् रहे वहीं शान्ति है। उसकी सारी क्रियाओंमें शान्ति रहती है। वह जिस मार्गपर चलता है, वहाँ शान्तिका प्रवाह बह निकलता है।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

ऐसी शान्ति केवल मनुष्यशरीरमें ही होती है, यदि शान्ति प्राप्त नहीं की तो वह पशुतुल्य है। अहा! मनुष्यशरीरकी देवतालोग आकांक्षा करते हैं, ऐसा वैराग्यवान् पुरुष हमारे लोकमें

आ जाय तो हमारा कल्याण हो जाय।

सुखके माथे सिल पड़ो जो नाम हृदयसे जाय।
बलिहारी वा दुःखकी जो पलपल राम रटाय॥

सब ओरसे वृत्ति हटाकर केवल परमात्मामें लगन लगानी चाहिये।

लगन लगन सब कोइ कहे लगन कहावे सोय।
नारायण जा लगनमें तन मन दीजे खोय॥

बाहरी-भीतरी उपरामता होनेसे सब फुरणा शान्त हो जाती है और भगवत्‌चिन्तन ही होता है। जो कहता है कि मुझसे संसारका चिन्तन नहीं छूटता तो समझना चाहिये कि इसे अभी सच्चे रसका अनुभव नहीं हुआ, क्योंकि गीता २। १६ में कहा है कि सत्‌का कभी अभाव नहीं होता और असत्‌का भाव नहीं होता। परमात्माका रस ही ऐसा है जिसके समान कुछ भी नहीं है। संसाररस तीनों कालमें अल्प है, किन्तु पूर्ण और सच्चा रस तो रसराजमें ही है। जो उस रसराज परमात्मामें रमण करता है, वही योगी है।

आजकल लोग कहते हैं कि वैराग्य-उपरामता नहीं हो तो भी ज्ञानसे मुक्ति हो जायगी, किंतु यह मेरी समझमें नहीं आता। भगवान्‌से प्रार्थना है कि ऐसा बिना उपरामताका ज्ञान तुम्हारे पास ही रखो। वह भक्ति भी दामी नहीं, जिसमें वैराग्य नहीं हो।

व्यवहार कालमें जो आसक्तिरहित फुरणा है, वह हानिकारक नहीं है, किन्तु स्वप्नकालमें भी यदि आसक्ति होती है तो वह हानिकारक है। स्वार्थ और आसक्तिरहित व्यवहारका पालन खांड़ेकी धार है अर्थात् आचरणमें आना कठिन लगता है। भगवान् कहते हैं—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसङ्ग्रहम् ॥

(गीता ३। २५)

हे भारत! कर्ममें आसक्त हुए अज्ञानीजन जिस प्रकार कर्म करते हैं, आसक्तिरहित विद्वान् भी लोकसंग्रह करना चाहता हुआ उसी प्रकार कर्म करे।

निष्कामीको सकामीकी तत्परताकी, सकामीको निष्कामीके आसक्तिके त्यागकी शिक्षा लेनी चाहिये। (गीता ३। २५)

जिस प्रकार नटनीका ध्यान पैरोंमें रहता है और वह नाचती भी है गाती भी है, इसी प्रकार मन परमात्मामें रहे और संसारका काम चलाते रहो। प्रभुके मिलनेकी कामना भी निष्कामभाव है।

महापुरुषोंकी महिमा

भगवान्‌ने महापुरुषोंकी जो महिमा गायी है, वह वर्तमान लोगोंके गानसे विपरीत है। आजकी दुनियामें जो चमत्कार दिखाता है, उसीको महापुरुष कहने लगते हैं। सोचनेकी बात है कि भला महात्मा लोगोंको चमत्कारसे क्या सम्बन्ध, किन्तु आजके जमानेमें जो धन और बेटा देता है, उसीको महात्मा मानने लगते हैं। एक बात यह भी ध्यानमें रखनी चाहिये कि भूत-भविष्यकी बात बतलानेसे ही महात्मा नहीं कहे जाते। महात्माओंमें प्रधानत: समता, शान्ति, आनन्द, सन्तोष, ज्ञान, वैराग्य, सरलता आदि विशेष रूपसे रहते हैं।

उनका संग करनेसे उनके दर्शन, भाषण, चिन्तनसे शान्ति होती है, पापोंका प्रत्यक्ष नाश होता है। उनका संग करनेसे उनके अनेक गुण सरलता, शान्ति, आनन्द, समता, ज्ञान, वैराग्य, उपरामता आदि हमारेमें आ जाते हैं, उनका स्वभाव स्वत: ही हमारेमें आ जाता है, यही उनका प्रभाव है।

प्रश्न—ऐसे पुरुषोंका संग पाकर भी हम तो उपरोक्त लाभ नहीं पाते। क्या कारण है? कुछ प्रतीत नहीं होता।

उत्तर—जैसे धन देखकर हमको भी कमानेकी इच्छा होती है और कमाते हैं, किन्तु धनसे क्षणिक आनन्द मिलता है। भोग मात्र मिलते हैं, किन्तु परमात्मविषयक आनन्द तो अटल है, वह पूर्णानन्द तो प्रथम विश्वास और फिर प्रयत्नसे मिलता है। जिसमें तुम्हारा विश्वास हो उनकी बात माननेसे आनन्द होता है।

महापुरुषोंकी स्वाभाविक महिमा है कि जिसपर दृष्टि पड़े वह पवित्र हो जाता है। जहाँसे जायँ वहाँ शान्ति बहा देते हैं। जिसमें जितनी श्रद्धा होगी, वह उतना ही महापुरुषोंके गुणोंको ग्रहण करनेकी योग्यताका अधिकारी होता है।

परमेश्वरके यहाँ आनन्दकी कमी नहीं होती, जैसे पारससे लाखों मन सोना बनानेपर भी वह कम नहीं होता। जहाँ महापुरुष विराजमान होते हैं, उनके ज्ञानका प्रभाव पड़ता है। वहाँ यदि पापी पुरुष बैठा होगा तो उस समय उसकी पापबुद्धि नष्ट होकर दैवी सम्पदाका विकास होगा। उनसे वार्तालाप करनेसे मन प्रसन्न होता है और यहाँतक कि उनके पास दो परस्पर वैरी बैठे होंगे तो वे भी वहाँ जबतक बैठे हैं, वैर भूल जायेंगे। यह महापुरुषोंकी महिमा है। वहाँ बैठते ही बिगाड़ करनेका भाव जाता रहता है।

महापुरुषोंमें स्वभावत: उदारता रहती है। उनके सामने कुविचार उत्पन्न नहीं होते और इससे अधिक प्रभाव पड़े तो समझो उनकी शक्ति अधिक है।

महापुरुषोंमें गुणातीत पुरुषोंके सभी लक्षण मौजूद रहते हैं। उनकी प्रत्येक क्रिया आनन्द देनेवाली होती है। उनके सोने, बैठने, चलने, फिरनेमें आनन्द रहता है। उनमें श्रद्धा होनेसे उनकी सारी बातें हमारेमें आ जाती हैं। जिनकी परमेश्वरपर पूर्ण श्रद्धा है, उनकी क्रिया भी अद्भुत होती है। जिसकी श्रद्धा बढ़ती है, प्रेम बढ़ता है, उसके ऐसे भाव उठते हैं कि महापुरुषोंके लिये मेरे शरीरको जलाकर धूल भी काममें आवे तो मैं कृतार्थ हो जाऊँ, सफल हो जाऊँ। वह श्रद्धालु अपना सब कुछ देनेमें ही सफलता मानता है। महात्माके संकेतसे

यदि सब कुछ खतम हो गया तो वह बड़ी भारी सफलता मानता है। वह हमेशा आज्ञा पानेकी प्रतीक्षामें ही बैठा रहता है और जरा-सी आज्ञा या संकेत पाते ही वह मुग्ध हो जाता है। महापुरुष यदि प्रसन्न होकर कुछ देना चाहें तो वह सेवामें भगवान्‌के दर्शन माँगता है।

परमात्माको प्राप्त करनेमें जो लाभ होता है, उतना ही लाभ महापुरुषोंके मिलनेमें होता है, वही सिद्धि महापुरुषके मिलनेमें होती है। ऐसी श्रद्धा नहीं होनेका कारण यही है कि वर्तमान वातावरणसे श्रद्धाका नाश हो गया है। महापुरुषोंमें श्रद्धा हो जाय तो कल्याण हो जाय, परन्तु ऐसे पुरुष संसारमें मिलते नहीं, मिलें तो पहचान नहीं पाते, पहचान जायँ तो श्रद्धा डावाँडोल रहती है, इसलिये पूरा लाभ नहीं होता। महापुरुषके संगसे दुर्गुण-दुराचार आदि मिटकर उत्तम गुण भर जाते हैं, उनके संगसे उद्धार हो जाता है, यह उनकी विशेषता है। भगवान् जिस प्रकार अपनी लीला करते हैं, उसी प्रकार महापुरुष भी करते हैं, किन्तु ईश्वरकी विशेष कृपासे उनमें ईश्वरका प्रचार करनेकी इच्छा होती है और वे करते हैं।

किसी मनुष्यको भगवान्‌के दर्शनकी इच्छा है, उसको यदि दर्शन प्राप्त हो जाय तो पूर्णानन्द हो जाता है। जैसे पाँच वर्षके बच्चेको भगवान्‌के दर्शनका महत्त्व नहीं मालूम पड़ता, किन्तु वह जब तत्त्व समझ लेता है, जब जागृति प्रकट होती है तो उस समय उसको सब तुच्छ प्रतीत होता है, तब भगवान् बिना दर्शन दिये नहीं रहते। परमात्माको प्राप्त पुरुष बालककी भाँति हमारेमें भगवत्प्राप्तिका संस्कार पैदा कर देता है।

पारसके लिये आप अपना सर्वस्व त्यागनेको क्यों तैयार हो

जाते हैं? इसलिये कि उसमें सोना बनानेकी बड़ी शक्ति है।

हम जो असंख्य जन्मोंसे कष्ट पा रहे हैं, उस आवागमनको वह प्रभु सदाके लिये नाश कर देता है। यह सामर्थ्य पारसमें नहीं है। शरीरकी पीड़ा पारस नहीं मिटाता, राजाओंकी राज्य-पीड़ा पारस नहीं मिटाता, किन्तु महापुरुष लाखों जन्मोंकी पीड़ा एक क्षणमें मिटा देते हैं। इससे भी बढ़कर उनकी सामर्थ्य यह है कि ऐसा आनन्द प्राप्त करा देते हैं, जो सदैव रहता है। प्रभु करावें या जिसको अधिकार दे दिया वे भी करा सकते हैं। जो प्राप्त हो गये हैं, वे रास्ता बता देते हैं। इससे साधक प्रभुको प्राप्त हो जाता है।

भगवन्नामकी महिमा अपार है

भगवान्‌के गुण-प्रभावका वर्णन शेष, महेश भी नहीं कर सकते तो मेरी बात ही क्या है? भगवान् न्यायकारी हैं, दयालु हैं। दयालु हैं तो हमको फल क्यों नहीं दीखता? हम स्मरण करते हैं फिर भी हमारा कल्याण क्यों नहीं होता?

नहीं होनेका कारण यही है कि हमलोगोंको विश्वास नहीं है कि उनके नामसे हमारे पाप नाश हो जायेंगे। हम श्रद्धा नहीं करते इसलिये कल्याण नहीं होता। हाँ, हमको विश्वास हो जाय तो भगवान्‌के नाम उच्चारणमात्रसे हमारा कल्याण हो जाय। शास्त्रोंमें जो महिमा कही गयी है, वह बहुत थोड़ी है। बिना विश्वास पूरा फल नहीं मिलता।

प्रश्न—यदि हमारी इस आयुमें कल्याण नहीं हुआ तो?

उत्तर—आजतक तुम्हारेसे जो नहीं हुआ, उनकी दयासे एक क्षणमें सब कुछ हो सकता है।

प्रश्न—यदि श्रद्धा-प्रेम नहीं हुआ तो इसमें भी अधिक दया है क्या?

उत्तर—हाँ उनको अन्तकालकी छूट दी है, उस समय बिना श्रद्धा-प्रेमके भी भगवान्‌के स्मरणसे पापोंका नाश हो जाता है।

प्रश्न—यह छूट किसलिये दी है?

उत्तर—जैसे फाँसीके समय हाकिम कहता है कि फाँसी छोड़कर यह जो चाहे सो दे दो, जिससे मिलना चाहे मिला दो। हमको असंख्य योनियोंमें भटकते-भटकते यह मनुष्यशरीर मिला

है। भगवान् सोचते हैं कि अब इसको मनुष्यशरीर नहीं मिला तो फिर असंख्य जन्मोंतक भटकना पड़ेगा? ऐसा सोचकर अन्तकालमें छूट दे देते हैं।

यदि ऐसा विचार किया जाय तो मालूम पड़ेगा कि हमको शीघ्र मनुष्यशरीर नहीं मिलेगा, इसलिये भगवान्ने छूट दी है और सदाके लिये मुक्त कर देते हैं। भगवान् मनुष्यशरीर दया करके केवल मुक्ति देनेके लिये देते हैं। देखो उत्तम देश-काल दिया, उत्तम वर्ण, धर्म और अनुकूल साधन भी दिये, यह प्रभुकी दया नहीं तो क्या है। जब उनके स्मरणमात्रसे कल्याण होता है तो क्या यह कम दया है। भगवान् अन्त समयमें ही क्यों देते हैं, अभी क्यों नहीं? इसलिये कि जीव यह साधन करके मुक्ति पा ले। किंतु जब देखते हैं कि इसका अन्तकाल आ गया तो वे स्मरणमात्रसे ही मुक्ति दे देते हैं। बहुत-से भाई श्रीरामजी और श्रीकृष्णजीके प्रभावको नहीं जानते। वे उन्हें योगी महापुरुष ही मानते आ रहे हैं। बात यही है कि वे रहस्यको जानते नहीं।

श्रीराम, श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य नहीं थे। मनुष्यशरीर धारण करना आदि तो उनकी क्रीड़ामात्र है। भगवान् श्रीकृष्णने जो कार्य किये हैं, उनके समान करना दुनियामें कोई मनुष्यके लिये तो क्या योगीकी शक्तिसे भी बाहरकी बात है। उनकी लीलाको आज पाँच हजार वर्ष हो गये। प्रकट होते ही चतुर्भुजरूपमें प्रकट हुए, देवकी प्रसन्न हो गयी, हाथ जोड़कर प्रार्थना करती है। कृष्ण सब बातें समझाकर फिर बालक बनकर रोने लगे। तब उनकी आज्ञानुसार सब कार्य किया गया।

बाल्यकालमें ही जब ब्रह्माजीने बछड़े चुरा लिये तो पुनः नये बना लिये। क्या यह कम प्रभाव है? यह उनकी शक्ति है। बड़े

बड़े राक्षस आते हैं, उनका क्षणभरमें नाश कर दिया। उनके जीवनकी घटनाएँ अलौकिक हैं। माता यशोदाने मुँह दिखानेको कहा कि तूने मिट्टी खायी है क्या? बस, फिर क्या था, केवल मुखमें तीनों लोकोंके दर्शन करा दिये। कंसको मारना बायें हाथका खेल था। अक्रूरको अद्भुत दर्शन दिये, वह मुग्ध हो गये। कितना प्रभाव है, क्या साधारण मनुष्य ऐसा कर सकता है?

कहाँतक प्रभुकी लीलाएँ कहें। देखो पाण्डवोंके साथ कितना उत्तम व्यवहार किया। जयद्रथको मारते समय किस प्रकार अर्जुनकी प्रतिज्ञा पूरी की, उत्तराके गर्भमें परीक्षित्‌की रक्षा की, अर्जुनको युद्धकी समाप्तिपर रथसे पहले ही उतार दिया, फिर रथ भस्म हो गया। अर्जुनके पूछनेपर समझाया कि यह तो भीष्मके बाणोंसे भस्म हो गया था, किन्तु मैंने रोक रखा था। कितना प्रभाव था? संकल्पमात्रसे रथको चलाया। क्या साधारण मनुष्य ऐसा कर सकते हैं? भगवान्‌ने और भी कई प्रभावशाली लीलाएँ कीं। द्रौपदीकी लाज बचायी, भरी सभामें वस्त्ररूप हो गये, जिसको किसीने नहीं जाना। कितनी अद्भुत शक्ति है। जब दुर्वासा ऋषि आये तब द्रौपदीकी रक्षा की। एक पत्ता खाकर दुर्वासासहित दस हजार शिष्योंका पेट भर दिया। उन्हींका क्या सारी त्रिलोकीका पेट भर गया। भला किसकी इतनी सामर्थ्य है।

सोलह हजार एक सौ आठ रानियोंके साथ विहार करते हुए नारदजीका भ्रम दूर किया, नारदजी मुग्ध हो गये। बोले भगवन्! धन्य है आपकी लीला, भला प्रभुके सिवाय इतने रूप कौन धर सकता है।

दुर्योधनकी सभामें उन लोगोंने कृष्णको बाँधनेका विचार किया। सात्यकिने भगवान् कृष्णको कौरवोंके विचार बताये। तब

भगवान् कहते हैं कि क्या मुझको अकेला समझ रखा है। ऐसा कहकर भयंकर विराट्रूप दिखलाया, क्या मनुष्य ऐसा विराट्रूप धारण कर सकता है? कभी नहीं, भगवान्की ही शक्ति है। इस प्रकार उनके प्रभाव, गुण असीम हैं, उनका कोई वर्णन नहीं कर सकता।

गीतामें अपना प्रभाव बतलाते हुए भगवान् कहते हैं कि हे अर्जुन और तो क्या मेरे एक अंशमें सारा ब्रह्माण्ड है। जब अर्जुनने प्रार्थना की तो विश्वरूपसे सब बतला दिया और पुनः प्रार्थना करनेपर चतुर्भुज और फिर सौम्यरूप हो गये, भला सोचनेकी बात है कि एक क्षणमें इस प्रकार इतने रूप कौन रच सकता है। इतने ऊँचे दर्जेके होकर भी वे दयालु प्रभु ग्वालबालोंके साथ खेलते हैं। गोपियोंके प्रेममें बिक जाते हैं। वे थोड़ा-सा छाछ कृष्णको देकर कहती हैं और नाचो तब फिर देंगी, भगवान् नाच देते हैं और छाछ पी लेते हैं। कितना प्रेम है? प्रेममें बिक जाते हैं। प्रेममें भगवान् अर्जुनका रथ छोड़कर प्रवीरका रथ हाँकने लग जाते हैं। यह कथा विस्तारसे जैमिनीय अश्वमेधपर्वमें देखनी चाहिये।

सबसे आवश्यक काम भगवत्-प्राप्ति है

बड़े आश्चर्यकी बात है कि लोगोंमें साधनकी तत्परता क्यों नहीं होती? यह ध्यानमें रखना चाहिये कि मृत्युका भरोसा नहीं है। बेहोशीमें जो मृत्यु होती है, वह तामसी होती है, '**अधो गच्छन्ति तामसाः।**' तत्परता भी नहीं है और ज्ञान या भक्तियोगका सहारा भी नहीं है, फिर भी जैसे सब कुछ करके निश्चिन्त बैठे हैं, कुछ परवाह ही नहीं है।

हम राजी-खुशी हैं, एक क्षणमें मृत्यु हो जायगी तो क्या करोगे? यह भी तो नहीं है कि जो करना था सो कर लिया। यह भी नहीं है कि भगवान्‌के प्रेम-प्रभावकी ही बातें सुनते-सुनते मरेंगे। किसी प्रकारका कुछ भी भरोसा नहीं है, फिर भी साधनमें नहीं लगते, कितनी बड़ी भूल है? यहाँ स्वर्गाश्रम आये हो, कोई भी जरूरी काम नहीं है। यदि हो तो भी तुम्हारे उत्तराधिकारी पूरा करेंगे ही। तुम्हारे मरनेके बाद बहुत मालिक बन जायँगे और यदि न भी हों तो कोई बात नहीं, जब शरीर छोड़ दोगे, तुम्हारा क्या सम्बन्ध रह जायगा? किन्तु यह काम तो तुम्हारे करनेका है, यदि नहीं किया तो हानि तुम्हारी होगी, अतएव सबसे जरूरी काम यही है, इसको मुख्य समझकर गौणवृत्तिसे दूसरा काम करते जाओ। रोज देखते-देखते लोग मर रहे हैं, फिर भी चेत नहीं होता ऐसे पुरुषोंके लिये तुलसीदासजी कहते हैं—

सो परत्र दुख पावइ सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि मिथ्या दोस लगाइ॥

परमात्मप्राप्तिकी सब सामग्री मौजूद है, फिर भी भजनकी कमी रही तो पूर्ति कब होगी। इसलिये सब कामोंको गौण समझकर उनका तिरस्कार कर देना चाहिये, नहीं तो याद रखो तुम्हारा तिरस्कार होगा, कोई भी रक्षा करनेवाला नहीं है। जीविकाकी चिन्ता करना भी मूर्खता है। देखो तुम्हारे देखते-देखते कुत्ते, पशु, पक्षी जी रहे हैं। जिनका हाट-बाजार कुछ नहीं है, उनका भरण-पोषण होता है। तुम तो मनुष्य हो, दूसरोंका उपकार कर सकते हो, फिर भी तुमको चिन्ता है तो मूर्खता है।

स्त्री, बालक तो तुम्हारे पूर्व जन्ममें अनेक हो चुके हैं और एक ये भी हैं, जिनके साथमें रहते हो। इनकी चिन्ता करना भी व्यर्थ है। इसलिये हमको सोचना चाहिये और घोर अज्ञान निद्रासे जागना चाहिये। भक्त, शास्त्र, वेद, तुलसीदासजी आदि सब-के-सब पुकार रहे हैं—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।

उठो, जागो, श्रेष्ठ महापुरुषोंको पाकर उनके द्वारा उस परब्रह्म परमेश्वरको जान लो।

कबिरा नौबत आपनी दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली बहुरि न देखहु आय॥
दो बातनको भूल मत जो चाहत कल्यान।
नारायण एक मौतको दूजे श्रीभगवान॥

इतना होनेपर भी हमको न जाने क्या हो गया है कि सुनकर-समझकर भी जोरके साथ साधनमें नहीं लगते, तत्पर नहीं होते। मार्ग भी सीधा पड़ा है, पूछनेकी आवश्यकता भी नहीं है, आँख मीचकर भी चले जाओ तो भी हानि नहीं है। एक ही सड़क है। भगवान् घोषणा कर रहे हैं—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२। ७)

हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

नावका केवट जोर-जोरसे पुकार रहा है। चले आओ, चले आओ, नौका तैयार है। मेरा ध्यान करते हुए चले आओ, यह देखो ध्वजा फहरा रही है, क्या नहीं दीखती तुम्हें? हमारी कितनी भूल है। अरे खयाल करो, यदि हम भूल जायँ तो भी वह भटकने नहीं देता। बिलकुल सीधा रास्ता है, बिना कष्टका रास्ता है। परमात्माकी भक्ति और प्रेमकी सड़क कठिन माननेवालेको कठिन और सुगम माननेवालेको सुगम है, किन्तु नाम लेते जाओ, लक्ष्य तय कर लो। उसके अनेक नाम हैं, जो याद रहे उसीको याद रखो, वह आनन्दमयी सड़क बड़ी सीधी है। चारों ओर आनन्द-ही-आनन्द है, मस्त होते चले जाओ। इसलिये भाई जो गयी सो गयी, अब जो समय हाथमें है विश्वास करो, हमारे लिये बहुत है, इतनेमें भी कल्याण हो जायगा। यदि कोई अभी मरनेवाला हो तो भी उसका काम हो सकता है, वह उपाय यही है कि प्रभुका नाम-रूप पकड़ रखो, उसमें कोई कष्ट नहीं है। जबतक नौका किनारे नहीं लग जाय, तबतक पकड़े रहो। नौका तो दृढ़ है और केवट भी होशियार है।

नौका—मनुष्यशरीर, केवट—भगवान्, रस्सा—नाम, चढ़ना—निश्चिन्त बैठकर भजन-जप करना, समुद्र—संसार, जल—संसारी विषय-भोग, गोदमें बैठना—ध्यान करना। बस यही सोचे कि हम गोदमें बैठे हैं। निराकारका उपासक हो या साकारका उपासक जो भी हो, चारों ओर उसको देखना ही उसकी गोदमें बैठना है। सच्चिदानन्दमयी माताकी गोदमें बैठे रहो, तुमको कोई भय नहीं है, या जो जिसका

इष्ट हो उसीकी गोदमें बैठ जाओ और ऐसा देखो कि मैं उनकी गोदमें बैठा हूँ तथा उनका हाथ हमारे सिरपर है एवं हम अभय हैं। अब अपनेको वहाँसे उठना ही नहीं है, हमारे शरीरकी सँभाल भी तो वही करता है, जैसे बच्चेके शरीरकी सँभाल माता करती है।

बस उनकी पूर्ण दया और प्रेम समझकर उन्हींकी गोदमें बैठे रहो, सदैव सुखी रहो, निर्गुण और सगुण दोनोंका फल एक ही है। दोनों एक ही स्थानपर जायेंगे, जो ऐसा समझता है उसको तो मृत्युका भी भय नहीं है। चाहे अभी मौत आवे या कालान्तरमें। किन्तु भगवान्‌की गोद कहीं छोड़ दो तो यह बात नहीं रहेगी, यह भी ध्यान रखना चाहिये। तुम कुछ भी मत करो पर गोद मत छोड़ो।

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

उनकी गोदमें बैठना ही शरण होना है। बस चारों ओर आनन्द है। तुम उनकी शरणमें हो, गोदमें बैठे हो, अभय हो, उनकी प्रतिज्ञा है—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

(वा० रा० ६। १८। ३३)

'जो एक बार भी शरणमें आकर 'मैं तुम्हारा हूँ' ऐसा कहकर मुझको रक्षाकी प्रार्थना करता है, उसे मैं समस्त प्राणियोंसे अभय कर देता हूँ। यह मेरा सदाके लिये व्रत है।'
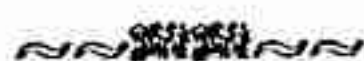
उत्तम बातोंके पालनसे लाभ

उत्तम आचरण करनेसे उत्तम गुण, शान्ति, क्षमा, दया, सरलता, पवित्रता, निरभिमानता, प्रेम, वैराग्य, उपरामता आदि आते हैं। भजन, तीर्थ, सत्संग आदि उत्तम व्यवहार हैं। उत्तम भाव आनेसे बुरे भाव स्वत: ही चले जाते हैं। गीता, गंगा, तीर्थ आदिकी महिमा तो वही है, किन्तु हमारे स्वभावदोषसे हम उनका अनुभव नहीं करते।

आज कई लोग तो सन्ध्यावन्दनको जानतेतक भी नहीं, फिर भला उनकी मुक्ति कैसे हो? हम फल तो बड़ा-बड़ा चाहते हैं और क्रिया बिलकुल नहीं करते, इसलिये सत्संगमें जाओ तो जो बातें सुनो, उनको उसी समयसे काममें लाना चाहिये। कई महात्माओंका ऐसा कथन हुआ है कि श्रोतापर सुनते ही प्रभाव पड़ता था, उसके हृदयमें वाक्य प्रवेश कर जाता था।

दक्ष प्रजापतिके सब पुत्रोंको नारदका उपदेश एकदम लगता गया। सत्संग सुननेका प्रभाव यही है कि उसके अनुसार बन जाना चाहिये। उत्तम गुणोंका पालन कर आत्माका उद्धार करना चाहिये और दुराचार तो हमारे अज्ञानसे होता है। जो आचरण सुधारना कठिन मानता है, उसके लिये कठिन है, जो सुगम मानता है, उसके लिये सुगम है। हमको तो परमात्माकी दयासे सब सुगम मान लेना चाहिये। यदि यहाँ आकर भी सुधार नहीं हुआ तो गीता १६। २३ के अनुसार गति होगी। इसलिये विचारसे ज्ञानद्वारा काम, क्रोध, लोभ, मोहका त्याग करना चाहिये।

ईश्वरकी भक्ति जिनके हृदयमें बसती है उनके निकट काम-क्रोधादि खल नहीं जाते हैं।

खल कामादि निकट नहिं जाहीं । बसइ भगति जाके उर माहीं॥

जो हमारे ऊपर अत्याचार करता है उसका भी भला चाहो, क्षमा कर दो, यह हमारा कर्तव्य है। यदि हमको प्रभुपर विश्वास है तो जो कुछ प्राप्त हो, उनका प्रसाद पुरस्कार समझकर स्वीकार करना चाहिये। तुम्हारे विरुद्ध कोई काम करे तो समझो हमारे पापका फल है, उसको ईश्वर-भक्तिका अंग बनाकर प्रसन्न रहो। इतना करनेपर भी क्रोध न जावे तो उपवास करना चाहिये।

जहाँ स्त्री होती है वहीं उसका पति जाता है। जहाँ कलह और क्लेश होता है वहाँ उनका पति मृत्यु दण्ड लिये खड़ा ही रहता है। जहाँ क्रोध पैदा हुआ कि समझो आग पैदा हो गयी। जिसके हृदयमें क्रोध होता है, वह जलता ही रहता है और आस-पासवाले पड़ोसियोंतकको भी जलाता रहता है।

एकको क्रोध आया, वह बड़बड़ाने लगा तो सामनेवालेको भी आ गया। तीसरेने पूछा भाई क्या बात है? दोनों बोले ऐसी-ऐसी बात है। तीसरा कहता है धूल डाल दो यानी छोड़ो। क्रोध आनेपर मीठा वचन बोलना पानी डालना है। काम-क्रोधादि भगवान्‌की भक्तिमें आते ही नहीं। बस भगवान्‌की इच्छामें अपनी इच्छा मिला दे। भगवान् कहते हैं—मेरा दास कहाकर यदि अन्य आशा रखे तो वह मेरा दास कहाँ?

मोर दास कहाइ नर आसा । करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा॥
सोइ सेवक प्रियतम मम सोई । मम अनुसासन मानै जोई॥

अभिप्राय यही है कि भगवान्‌की आज्ञानुसार काम करना चाहिये। ऐसे आज्ञाकारी पुरुषमें दैवी सम्पदा बिना बुलाये ही आ जाती है। भगवान् कहते हैं—

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

(गीता १२। १३-१४)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहङ्कारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है; तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है—वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझको प्रिय है।

मन, बुद्धि परमात्माको अर्पण कर दिया, उसके लिये परमात्मा सब जगह हैं। ऐसे पुरुषके लिये भगवान् कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

हमारा समय बीता जा रहा है, चेतो, नहीं तो यमका परवाना अभी आनेवाला है, फिर हमारी कुछ भी नहीं चलेगी।
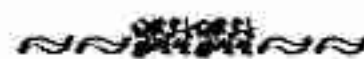
भगवान् जल्दी कैसे मिलें

पपीहेके समान पुकार लगावे तो भगवान् शीघ्र मिलेंगे। पपीहेको जल देनेवाले बादल तो जड़ हैं, किन्तु भगवान् तो दयालु हैं, वे जल्दी मिलते हैं, केवल हमें दर्शनकी प्यास होनी चाहिये। भगवान्‌का मिलना कोई विशेष कठिन नहीं मालूम पड़ता। वह तो दयासागर हैं, अवश्य मिलते हैं और मिलेंगे ही। हम उनसे मिलना चाहेंगे तो वे हमसे अधिक मिलना चाहेंगे। हमें अपनी शक्तिभर चेष्टा करनी चाहिये। यदि हम चाहें ही नहीं तो उनका क्या कसूर। शक्ति और चेष्टा जब दोनों हम काममें लेंगे तो विलम्ब कैसे होगा। उनसे मिलनेका उपाय तो प्रेम ही है। भगवान् जल्दी कैसे मिलें, भगवान् जल्दी कैसे मिलें—इस प्रकारकी लगन खूब जोरकी लगानेसे भगवान् शीघ्र मिलते हैं। सच्ची लगन तो ऐसी होती है कि तन-मन सब खो जाता है।

भगवान् कहते हैं—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥
तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। ९-१०)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते

हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

इससे और भी जल्दीके लिये भगवान् कहते हैं—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२। ७)

हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

यह भगवान्का वचन है, इसलिये हमको शीघ्र ही ऐसी बातोंपर विश्वास करके लगन लगानी चाहिये।

मनुष्यके हृदयमें फुरणा होती है, चंचलता विशेष रहती है, इसकी चौकसी करनी चाहिये। मन यदि कोई वस्तु जो फालतू हो उसको पकड़ लेवे तो उसे वहाँसे पकड़कर लाना और समझाना चाहिये। इस प्रकार सुधार करनेसे भी शीघ्र उद्धार होता है। परमात्मामें इतना रस और आनन्द है कि कुछ कहा नहीं जा सकता, अमृत है, अब उसको प्राप्त करना हो तो साधन करो और अमृत पीओ। जब अमृतका स्वाद आ जाता है तो उपदेशकी जरूरत नहीं रहती।

भगवान्का भजन पहले कठिन-सा प्रतीत होता है, अभ्याससे सरल हो जाता है। हमारे कुकर्म आदि जड़ होते हुए भी चेतनके समान काम करते हैं। प्राण जड़ है पर काम चेतनका करता है, झट भूख-प्यासकी खबर दे देता है। हमको बार-बार जो बुरे संस्कार आते हैं, उनका कारण हमारा पूर्वका चिन्तन किया हुआ

है, इसलिये उस अभ्यासको मारनेके लिये कोशिश करनी चाहिये।

जो भाई एकान्तमें बैठकर भगवान्‌से मिलनेकी इच्छा करता है, तब वहाँ शत्रुरूपमें कुसंस्कार आकर बाधा देते हैं। उसका प्रभाव यह पड़ता है कि मन उकताने लगता है और कहता है कि जल्दी करो। जब बुद्धिद्वारा पढ़ी-सुनी बातोंका विचार करता है कि आज तो ध्यान करना है, तब वह कुबुद्धि आकर कहती है अभी क्यों करते हो, पीछे आकर कर लेना, क्योंकि यह सामनेका काम खराब हो जायगा। बस फिर तो हाँ-हाँ मिल गयी और ध्यान नहीं होता। हमारा स्वभाव-वृत्ति इतनी खराब है, इसलिये ध्यानमें बैठे, तब आलस्य, विक्षेपवाली वृत्तियोंको देखता रहे कि ये मेरे पास नहीं हैं, सब दूरसे ही नाश हो रही हैं।

जो दृढ़तासे ध्यान करता है, स्वभाव उसका कुछ नहीं बिगाड़ता। हमारे शत्रु स्वभाव और आसक्ति हैं, ये मनको भुलावेमें डाल देते हैं और हमारा पतन होता है। भगवान् अर्जुनको कहते हैं—

जहि शत्रुं महाबाहो कामरूपं दुरासदम्। (गीता ३। ४३)

हे महाबाहो! तू इस कामरूप दुर्जय शत्रुको मार डाल।

जहाँ कामरूप शत्रुका नाश हुआ कि अटल शान्ति हो जाती है, प्रभुमें प्रेम बढ़ने लगता है। जब अधिक प्रेम होता है तब भगवान् बिना मिले नहीं रुक सकते। नारायण! नारायण! नारायण!
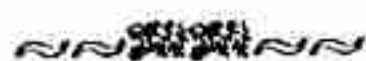
तीर्थोंमें पालनीय बातें

हमलोग यहाँ तीर्थ करने आये हैं। प्रापणीय चार पदार्थ हैं— धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। अर्थ यानी रुपया तो तीर्थोंमें मिलता नहीं है। धर्मसे सात्त्विक कर्म होकर परमात्माकी, परमगतिकी प्राप्ति होती है। कामसे यह होता है कि राजसी मनुष्य तीर्थ करके कामनापूर्ति करते हैं, धर्मका पालन करते हैं। सकामभावसे लोक-परलोकमें राजसी सुख भोगते हैं, इसलिये हमको साधन करके भगवत्-प्राप्ति करनी चाहिये। तीर्थोंमें परमात्माकी प्राप्ति कैसे हो? उसमें बाधक क्या है? ऐसा प्रश्न उठता है। बात ऐसी है कि तीर्थोंकी पवित्र भूमिमें जो भी कार्य किया जाता है, वह महान् हो जाता है।

तीर्थ, महात्मा और ईश्वर हमारे कार्यका विस्तार कर देते हैं, इनमें श्रद्धा करो तो कल्याण हो जाता है, मुक्ति हो जाती है। इनमें अश्रद्धा, इनका अपमान करनेसे घोर नरक होता है। जैसे तुलसीमें जल डालनेसे मुक्ति होती है और पेशाब करनेसे नरक होता है, इसी प्रकार गंगास्नान श्रद्धासे करेंगे तो पुण्य होगा, यहाँ धर्म करेंगे तो महान् पुण्य होगा और पाप करेंगे तो वह महान् पाप होकर वज्रलेप हो जायगा।

पापी मनुष्योंको तीर्थोंमें पाप धोनेके लिये आना चाहिये, बढ़ानेके लिये नहीं। वेद, शास्त्र, तीर्थ आदिकी निंदा करनेसे महान् पाप होता है। यहाँ हम तीर्थमें संयमसे रहें तो पाप नहीं रहता।

खाने-पहननेमें, भोग आदिमें संयम रखना चाहिये। ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। पर स्त्रीको माता-बहिनके समान समझे।

यदि तीर्थमें आकर संयम-पालन नहीं किया तो तीर्थ आना वृथा है। यदि स्त्रीको पुरुष और पुरुषको स्त्री दीख जावे तो भगवान्‌का नाम ले लेवे, बुरी वासना हो जाय तो एक समय उपवास करे। क्रोध नहीं करना चाहिये, झूठ नहीं बोलना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते॥

(गीता १७। १५)

जो उद्वेग न करनेवाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है तथा जो वेद-शास्त्रोंके पठनका एवं परमेश्वरके नाम-जपका अभ्यास है—वही वाणीसम्बन्धी तप कहा जाता है।

ऐसे वचन बोलने चाहिये। माताओंसे प्रार्थना है कि स्वप्नमें भी पर पुरुषका दर्शन हो जाय तो पिता-भाईके समान भाव लाना चाहिये।

अत्रिपत्नी अनसूयाने सीताको उपदेश दिया। यह प्रसंग याद करके जीवनमें उतारे। तीर्थमें हमको तपस्या करनी चाहिये, जप, इन्द्रियोंका संयम, सत्संग, गंगास्नान करना चाहिये और जीवनको पवित्र बनाना चाहिये।

भोजनमें संयम करे, मिर्च, अमचूर आदि हानिकारक है। वैराग्य करना चाहिये। चटपटी चीज नहीं खावे। दो ही चीज एक लगानेकी, एक खानेकी; पहननेमें भी संयम करना चाहिये।

बोलनेमें संयम रखना चाहिये। बोलना तो सत्य ही, नहीं तो बोलना ही नहीं, यदि कोई आदमी पाप करता है और उसकी

कोई निंदा करता है तो निंदा करनेवालेको पाप लगता है।

गीताके अनुसार शरीरका तप करना चाहिये—

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते॥

(गीता १७। १४)

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानीजनोंका पूजन, पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा—यह शरीरसम्बन्धी तप कहा जाता है।

पतिव्रता स्त्रियाँ तो पूजनीय हैं, किन्तु साधारण स्त्रियोंको भी धर्म-पालन करना चाहिये।

विधवा माताओंको तो वैराग्यमय जीवन ही बिताना चाहिये। जिस प्रकार महात्मालोग आचरण करते हैं उस प्रकार करना चाहिये।

पतिव्रता स्त्रीको अधिक लाभ होता है, पति ही उसका गुरु है। मरनेपर भी उसीका उपदेश पालन करना चाहिये। गुरु यदि बनाना ही होवे तो परमात्माको बनाना चाहिये। दूसरेको तो कभी बनाना ही नहीं चाहिये। जो पुरुष स्त्रियोंको शिष्या बनाता है, उसको नरक मिलता है। स्त्रीको अपने-से बड़े जितने हैं सभीको गुरुरूपसे मानना चाहिये। ऐसी स्त्री मन्दिरमें पूजा करनेवाली स्त्रीसे श्रेष्ठ है। कोई भी स्त्री दूसरे बराबर उम्रवाले या किसी भी प्रकारके पुरुषको गुरुभाई नहीं बनावे और न कोई पुरुष ही गुरु-बहिन बनावे। बात यही है कि परस्पर गुरुभाई-बहिन नहीं बनाना चाहिये।

शास्त्र कहता है, मनुजी आदि बड़े-बड़े महापुरुष कहते हैं कि अपनी बहिन या बेटी, माता ही क्यों न हो उनके साथ एकान्तमें कभी नहीं रहना चाहिये। कोई गुप्त बात नहीं करनी चाहिये।

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(श्रीमद्भागवत ९। १९। १७)

अपनी माँ, बहिन और कन्याके साथ भी अकेले एक आसनपर सटकर नहीं बैठना चाहिये। इन्द्रियाँ इतनी बलवान् हैं कि वे बड़े-बड़े विद्वानोंको भी विचलित कर देती हैं।

श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते॥

(गीता १५। ९)

यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचाको तथा रसना, घ्राण और मनको आश्रय करके अर्थात् इन सबके सहारेसे ही विषयोंका सेवन करता है।

मनुजी मनुस्मृतिमें कहते हैं लड़की बाल्यावस्थामें पिताके अधीन, विवाह होनेपर ससुरालमें पतिके अधीन और पतिके मर जानेपर पुत्रोंके अधीन रहे। स्त्रीको घरके बाहर जानेके लिये शास्त्र बिलकुल मना करते हैं। इसलिये दूसरे पुरुषोंके साथ स्त्रियोंको धार्मिक सम्बन्ध भी नहीं जोड़ना चाहिये, क्योंकि आजकल सौमें एक आधे ही सत्पुरुष मुश्किलसे मिला करते हैं।

स्त्रियोंको कुसंग नहीं करना चाहिये और फेरीवाले, चूड़ी, गोटा, किनारी आदि बेचनेवालोंसे भी वार्तालाप नहीं करना चाहिये। गीताजीमें कहा है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

(गीता १६। २१)

काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके द्वार

आत्माका नाश करनेवाले अर्थात् उसको अधोगतिमें ले जानेवाले हैं, अतएव इन तीनोंको त्याग देना चाहिये।

इनका फल क्या होता है क्या मिलता है?

आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि।
मामप्राप्यैव कौन्तेय ततो यान्त्यधमां गतिम्॥

(गीता १६। २०)

हे अर्जुन! वे मूढ़ मुझको न प्राप्त होकर जन्म-जन्ममें आसुरी योनिको प्राप्त होते हैं, फिर उसमें भी अति नीच गतिको ही प्राप्त होते हैं, अर्थात् घोर नरकोंमें पड़ते हैं।

नरककी सीढ़ी—कामसे व्यभिचार, क्रोधसे हिंसा तथा लोभसे झूठ; इस प्रकार वह नरकको प्राप्त होता है, इसलिये हृदयको शुद्ध रखना चाहिये उसमेंसे पाप, कपट, अहितचिन्तन निकाल देना चाहिये।

तीर्थमें तुमको यही समझना चाहिये कि उलटा काम करनेसे जैसे देवता, ब्राह्मण, पिता, सास, श्वशुर, देवरानी, जिठानी आदिका तिरस्कार करनेसे यदि छः माहमें नरक होता हो तो गंगा-किनारे ऐसा किया हुआ एक दिनमें ही घोर नरक मिलेगा।

ब्रह्मचर्यकी जगह यदि अनाचार करे तो वह तीर्थमें किया हुआ पाप महान् बन जाता है और यही उलटा घाटा है। तीर्थमें हिंसा भी नहीं करनी चाहिये और दया करनी चाहिये। नहीं तो बस यह हाल होगा—

आये थे कुछ लाभको खोय चले सब मूल।
फिर जाओगे सेठ पै पले पड़ेगी धूल॥

यह दशा होगी। नीच स्त्रियोंसे नरकके जीव भी डरते हैं, इसलिये भी तीर्थमें पाप नहीं करना चाहिये। तीर्थमें बीड़ी,

सिगरेट, तम्बाकू आदि सेवन नहीं करना चाहिये, ये तामसी हैं। '**अधो गच्छन्ति तामसाः**' गीतामें जो आसुरी सम्पदा है उसका त्याग करना चाहिये और दैवी सम्पदाका पालन करना चाहिये। यह लोक-परलोक दोनोंमें अमृत है। तीर्थमें खान-पान आदिके सिवाय और चार मुख्य बातें करनी चाहिये—

१. यहाँ आकर भजन, जप, ध्यान आदि करना चाहिये।

२. सत्संग, सत्‌शास्त्र, संत-महात्माओंका उपदेश सुनना और कथा, कीर्तन, भजन आदि करना चाहिये।

३. दुःखी, अनाथ, तीर्थ करनेवाले, भजन करनेवाले और यहाँतक कि सारे जीवोंका उपकार करना चाहिये।

४. संयम करे, मन-इन्द्रियोंका तप करे।

इस प्रकार माता और बहनें जबतक तीर्थमें रहें तबतक करें, और पुरुषोंको भी इसी प्रकार करना चाहिये। सदाचारकी जड़, सदाचारका मूल सार यह है जिससे परमशान्ति मिल जाय और सारे दुःखोंका अन्त हो जाय। कहा है—

सुत दारा और लक्ष्मी पापीके भी होय।
संत मिलन और हरि भगति दुर्लभ जगमें दोय॥

ईश्वर-भक्तिमें प्रधान भजन है, वह भी प्रभुका ध्यान रखते हुए करे। सत्संगमें महात्मा पुरुषोंका संग करनेसे आत्मा पवित्र होती है। रामायणमें तुलसीदासजी कहते हैं—

बिनु सतसंग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु राम पद होइ न दृढ़ अनुराग॥
तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

गीतामें भी भगवान् मायासे पार होनेका उपाय बताते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

क्योंकि यह अलौकिक अर्थात् अति अद्भुत त्रिगुणमयी मेरी माया बड़ी दुस्तर है; परंतु जो पुरुष केवल मुझको ही निरन्तर भजते हैं वे इस मायाको उल्लङ्घन कर जाते हैं अर्थात् संसारसे तर जाते हैं।

सत्संग परमात्माकी भक्तिमें सहायक है। भगवान्‌के प्रेम-प्रभावकी बात सुनकर जो मुग्ध हो जाता है, वह पापी-से-पापी क्यों न हो, वह भी तर जाता है। भगवान् कहते हैं—

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ।
तयोर्न वशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥

(गीता ३। ३४)

इन्द्रिय-इन्द्रियके अर्थमें अर्थात् प्रत्येक इन्द्रियके विषयमें राग और द्वेष छिपे हुए स्थित हैं। मनुष्यको उन दोनोंके वशमें नहीं होना चाहिये, क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याणमार्गमें विघ्न करनेवाले महान् शत्रु हैं।

सत्संग हो या ईश्वर-भक्ति, इनमेंसे एकका भी पालन करनेसे दोनोंकी प्राप्ति हो जाती है और परम शान्ति मिल जाती है।

मनमें भगवान्‌को बसा लो

समय तो जा रहा है और अपना काम कर रहा है। आप भले ही अपना काम न करें, समय आपके लिये नहीं रुक सकता। खूब जल्दी अपना सुधार करना चाहिये। जल्दी सुधारसे ही उद्धार होगा। उसका उपाय यही है कि अपने मनमें भगवान्‌को बसा लो। प्रत्येक व्यवसायी अपने धंधेमें विश्वास रखता है और उसे नहीं छोड़ता। अपनेको ऐसा ही उद्देश्य रखना चाहिये। चलते- फिरते बस उन्हीं भगवान्‌का नाम स्वरूपसहित पकड़े रहो। जो अपना कल्याण चाहता हो, उसके लिये यह मार्ग अति उत्तम है। बस यही काम प्रधान है, सबसे पहले यही करना चाहिये। एकान्तमें बैठकर यही चेष्टा करे और नींद लग जाय तो फिर जब आँख खुले, तब फिर शुरू कर दे। सबसे बढ़कर ध्यान है। आलस्य, संसारी चिन्तन, विक्षेप, स्फुरणा यह सब एक ही बात है। इनके नाशके लिये एकान्तमें कड़ाईसे बैठे कि हमको तो बस यही काम करके छोड़ना है, चाहे जो कुछ हो जाय। बार-बार सोचना चाहिये कि काम बननेके पूर्व यदि शरीर चला जायगा तो अपना क्या हाल होगा। इसलिये पहले ही अपना काम बना लेना चाहिये। यदि यह काम बाकी रह गया तो बड़ी मुश्किल होगी। अपने तो संसारसे वैराग्य कर लें तो ध्यान आप ही लग जायगा। ध्यान लगनेपर, उसका स्वाद आनेपर तो कुछ भी अच्छा नहीं लगता और एक क्षण भी ध्यान छूट जानेपर वह घबरा जाता है। एक क्षण ध्यान

करना एक तरफ और त्रिलोकीका राज्य एक तरफ, तो दोनोंमें ध्यानका ही मूल्य है। अपनेको विश्वास करना चाहिये कि ध्यानके समान कोई चीज ही नहीं है, इसलिये ध्यानके लिये चेष्टा करनी चाहिये। ध्यान स्थायी और सदैव बना रहे, ऐसी चेष्टा करनी चाहिये। यदि आज नहीं लगा तो कलके लिये कड़ी कोशिश करनी चाहिये। अवश्य ध्यान लगेगा ही। श्रद्धा, विश्वास, सत्संग, प्रयत्न और वैराग्य—ये सब ध्यानमें सहायक हैं। श्रद्धा होनेसे साधन सुगम होता है। हमको भगवान्‌पर विश्वास करना चाहिये और सब काम छोड़कर इस ध्यानके लिये ही चेष्टा करनी चाहिये।

श्रद्धाका मतलब यही कि जो बात कही जाय उसको उसी समय मानें और मानें ही नहीं, उसी समयसे आरम्भ कर दें। शरीरका क्या विश्वास, रहे न रहे।
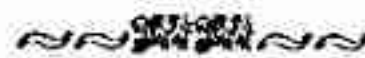
श्रेष्ठ पुरुषोंमें समता ही सुगन्ध है

श्रेष्ठ पुरुषोंमें जो सद्‌गुण हैं, वही उनमें सुगन्ध है और जिसमें दुर्गुण हो, वही दुर्गन्ध है। संसारमें अच्छे और बुरे सभी प्रकारके पुरुष दीखते हैं, किन्तु हम सबको सम कैसे देखें, समता तो होनी ही चाहिये।

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते॥

(गीता ६। ९)

सुहृद्, मित्र, वैरी, उदासीन, मध्यस्थ, द्वेष्य और बन्धुगणोंमें, धर्मात्माओंमें और पापियोंमें भी समान भाव रखनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठ है।

नीच कर्म करनेवाला हो या उच्च कर्म करनेवाला हो, सबमें समबुद्धि होनी चाहिये। अपना बुरा करनेवाला असाधु, साधु कोई भी हो, सबमें समता होनी चाहिये। सदाचारी, दुराचारी, वैरी, मित्र इन सबमें समबुद्धि रखनी चाहिये। विचार करना चाहिये कि इसके लिये हमको क्या करना चाहिये। ज्ञानीके समबुद्धि होनेका उपाय भगवान् बताते हैं—

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

(गीता २। १५)

क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ! दुःख-सुखको समान समझनेवाले जिस धीर पुरुषको ये इन्द्रिय और विषयोंके संयोग व्याकुल नहीं करते, वह मोक्षके योग्य होता है।

भक्तिमार्गके साधकके लिये समबुद्धि होनेका उपाय भगवान् बताते हैं—

मां च योऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते।
स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते॥

(गीता १४। २६)

जो पुरुष अव्यभिचारी भक्तियोगके द्वारा मुझको निरन्तर भजता है, वह भी इन तीनों गुणोंको भलीभाँति लाँघकर सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको प्राप्त होनेके लिये योग्य बन जाता है।

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥
ये तु धर्म्यामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेऽतीव मे प्रियाः॥

(गीता १२। १९-२०)

जो निन्दा-स्तुतिको समान समझनेवाला, मननशील और जिस किसी प्रकारसे भी शरीरका निर्वाह होनेमें सदा ही सन्तुष्ट है और रहनेके स्थानमें ममता और आसक्तिसे रहित है—वह स्थिरबुद्धि भक्तिमान् पुरुष मुझको प्रिय है। परन्तु जो श्रद्धायुक्त पुरुष मेरे परायण होकर इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृतको निष्काम प्रेम-भावसे सेवन करते हैं, वे भक्त मुझको अतिशय प्रिय हैं।

यह तो ठीक ही है, किन्तु साधारण पुरुष कैसे समदृष्टिसे देखें? साधारण पुरुषके लिये सीधेसे सीधा उपाय यह है कि जो सदाचारी है, साधु पुरुष है, उनमें श्रद्धा-प्रेम करना चाहिये। उनको देखकर प्रसन्न होना चाहिये और दुराचारी पुरुषोंसे न तो कुछ कहना चाहिये, न उपेक्षा करनी चाहिये, उनसे परे रहना चाहिये।

प्रश्न—दोनोंमें समता कैसे हो?

उत्तर—बात यह है कि उपदेश करनेपर उसका प्रभाव पड़नेसे वे भी सद्‌गुणी बन जाते हैं, उनमें समता आ जाती है।

भक्तिमार्गमें प्रभुके साथ अनेक भाव होते हैं, वात्सल्य भी उनमें एक है, जैसे गऊ बच्चेको देखती है और बच्चा गऊको, इसी प्रकार हमारा भी प्रभुमें वात्सल्य भाव हो जाना चाहिये। बस फिर वे हमको देखते रहें और हम उनको या ऐसा हो कि हम ही उनको देखा करें।

ईश्वर सबकी आत्मामें, सबमें विराजमान हैं। वे सदाचारी-दुराचारी सबमें हैं, क्योंकि ये सब भगवान्‌की प्रजा हैं, पुत्र हैं या जो भी कहो उनके ही हैं, इसलिये किसीसे भी घृणा नहीं करनी चाहिये, अपितु जो घृणित हैं, उनको सुधारनेका ही प्रयत्न करना चाहिये। सख्यभावमें यदि हम ईश्वरको सखा मानते हैं तो सारा संसार हमारा सखा है, भाई है, इसलिये भाइयोंसे घृणा नहीं होती, क्योंकि सबमें समान प्रेम है। यदि किसीको घृणा होती है तो समझो वह समता नहीं रखता। माता-पिताकी सेवाके समान सबको नारायण समझकर सबकी सेवा करनी चाहिये। जिनमें दुर्गुण-दुराचार हों उनकी भी सेवा करनेसे घृणा नहीं होती और समता ही रहती है। इस समताकी समाप्ति भक्तिमें होती है, इसलिये सबमें परमात्मबुद्धि, वासुदेवबुद्धि होनी चाहिये। जैसे गीताजीमें भगवान्‌ने कहा है—'**वासुदेवः सर्वमिति**'।

ज्ञानमार्गके अनुसार समता रखनेवालेको सर्वप्रथम उपराम होना चाहिये, सारे भूतोंमें अपनी आत्माका दर्शन करना चाहिये—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता ६। २९)

सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें कल्पित देखता है।

जिस प्रकार हमारे शरीरका कोई भी अंग हम अपना समझते हैं, यदि हमारे शरीरके एक भागमें दर्द हो जाय तो हमको उस अंगसे कुछ घृणा नहीं होती, उसको सुधारनेका उपाय ही करते हैं, ऐसे ही यह संसार भगवान्का शरीर है और संसार हमारी आत्मा ही है।

ईशा वास्यमिदꣳ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

(ईशा० १)

अखिल ब्रह्माण्डमें जो कुछ भी जड़-चेतनस्वरूप जगत् है यह समस्त ईश्वरसे व्याप्त है। उस ईश्वरको साथ रखते हुए त्यागपूर्वक इसे भोगते रहो इसमें आसक्त मत होओ; क्योंकि धन-भोग्य पदार्थ किसका है अर्थात् किसीका भी नहीं है।

उनमें दुर्गुण हैं उनको उनसे बचानेकी चेष्टा करनी चाहिये। हमारी द्वेषबुद्धि हमारे शरीरमें नहीं होती, रोगमें होती है। जब हमारी और दुराचारियोंकी आत्मामें कोई भेद नहीं है और रोग यानी दुराचार दुर्गुण है तो दुर्गुणसे द्वेष करके उसे हटाना चाहिये, क्योंकि ये जड़ हैं, विकार हैं, दोष हैं, इनका शास्त्रने अभाव बतलाया है, इनको नहीं रखना चाहिये। सोना, मिट्टी, सुख-दुःखमें समबुद्धि होना दूसरी बात है, पहले तो आत्मामें समभाव होना चाहिये। यह भी समझना चाहिये कि हम जिनमें-जिनमें दुर्गुण-दुराचार देखते थे, वास्तवमें वे प्रतीत होते थे, परन्तु उनमें थे नहीं। वह दुर्गुणोंको स्वप्नवत् समझकर भी ब्रह्मको विकाररूप देखता

था, वहाँ उसको अब विज्ञानानन्द परमात्मा दीखता है।

आगे जाकर भक्ति और ज्ञानमार्ग दोनोंकी वृत्ति एक हो जाती है, दोनोंका फरक मात्र यह रह जाता है कि ज्ञानमार्गी तो प्राणिमात्रको साक्षात् आत्मा ही मानता है, दूसरी वस्तु नहीं रह जाती। वह तो **'आत्मौपम्येन सर्वत्र'** हो जाता है। भेद न तो मूलमें है और न अन्तमें, जो भेद है वह कल्पित है। यदि भेद हो तो वह दोषी समझा जाता है। वहाँ तो सब तरफ समभाव है। परमात्माकी प्राप्तिके उत्तरकालमें उसके द्वारा जो सुधार होता है, वह लोकोपकारके लिये ही होता है, इसलिये अपने शरीरकी सेवा और उनकी सेवामें फरक नहीं रखना चाहिये।

भक्तियोगवालेको चींटीसे ब्रह्मातक नारायणरूप समझना चाहिये और साक्षात् भगवान्का दर्शन करते हुए सेवा करनी चाहिये।

भगवान्का भक्त पूजा करते समय यदि प्रभुके किसी अंगपर कीचड़ लगा हुआ हो तो उसको धोकर पीना चाहता है, इसी प्रकार दुनिया नारायणरूप ही है, उसकी तन-मनसे सेवा करनी चाहिये। हम प्रभुके मस्तकपर चन्दन-पुष्प चढ़ाते हैं, खानेकी वस्तु मुखके सामने रखते हैं, यानी जिस प्रकार हम प्रभुके अंगोंमें यथायोग्य व्यवहार करते हैं, उसी प्रकार दुनियाको प्रभुका अंग जो साक्षात् है ही, मानकर सबकी ईश्वरके समान ही पूजा करनी चाहिये। **'अनेकरूपरूपाय विष्णवे प्रभविष्णवे'**।

ज्ञानकी दृष्टिमें ऐसा देखे कि मेरी आत्मा इतनी है कि उसका अंत ही नहीं है। बात यह है कि ज्ञानीमें उपरामता होनेसे वह एकान्त स्वभाववाला है। भक्तिमार्गवाला ईश्वर परमात्माकी भावना करता है और उनका स्वरूप समझकर उनमें दया, प्रेम रहनेसे परमात्माको प्राप्त होनेपर उसमें स्वाभाविक ही प्रेम रहता है।

दोनोंका कार्य, दोनोंकी सिद्धि और वृत्ति भी एक ही है

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहङ्कारः समदुःखसुखः क्षमी॥

(गीता १२। १३)

जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावसे रहित, स्वार्थरहित सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहङ्कारसे रहित, सुख-दुःखोंकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालेको भी अभय देनेवाला है।

सन्नियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता १२। ४)

परन्तु जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मन-बुद्धिसे परे, सर्वव्यापी, अकथनीयस्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

इन्द्रियोंका संयम रखना, समताका भाव रखना है। ज्ञानमार्गवालोंकी अपेक्षा भक्तिमार्गवालोंमें दया, प्रेम, व्यवहार विशेष दीखता है, किन्तु दोनोंका व्यवहार आदर्श है। साधन भगवान्‌की कृपासे ही सरल होता है। साधन मैं करूँगा यह हमारी कमी है। यह भगवान्‌की परिपाटी है कि कोई कहे कि मैं ध्यान लगा दूँगा तो उसको जितना मालूम है, वह भी भूल जायगा। अहंकार भगवान्‌को अच्छा नहीं लगता। ज्ञानी और भक्त 'मैं' नहीं कहता, बल्कि अज्ञानी कहता है।

श्रद्धाका स्वरूप यही है कि वेद, शास्त्र, लोक, परलोक, परमेश्वरमें प्रत्यक्षकी तरह विश्वास होवे, वह श्रद्धा है और प्रत्यक्षसे बढ़कर जो श्रद्धा है, वह परम श्रद्धा है। महापुरुष और प्रभुकी दयासे श्रद्धा होती है।

प्रभुकी दया तो सबपर ही है, परन्तु जो दयाका पात्र होता है उसपर वह दया पूरा काम करती है और वे पुरुष ही दयाका पूरा लाभ उठाते हैं। जो अपनेपर प्रभुकी जितनी दया समझता है, उसपर उतनी ही दया प्रभुकी है। प्रभुकी दया सबपर अपार है, पर हम मानते नहीं, परन्तु जो हर वक्त उस अपार दयाको अपने ऊपर समझता है, वह हर वक्त प्रसन्न रहता है, उसको कभी अप्रसन्नता होती ही नहीं।

हमपर दया कैसे हो, इस प्रकार कहते रहना ही प्रभुकी दया माननेका उपाय है, किन्तु कहना मुँहसे नहीं हृदयसे होना चाहिये। श्रद्धावान् पुरुषोंका संग करनेसे, महात्माओंका संग करनेसे, परमात्माकी दया मानी जा सकती है। प्रभुके नाम, रूप, गुण, लीला, प्रभावकी महिमा जाननेवालोंसे सुने, तब परमात्मामें श्रद्धा होती है और श्रद्धासे दया मानी जाती है।

सत्यको ही प्राण समझे, माता-पिताकी सेवाका महत्त्व

बालकोंको प्रथम ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिये। केवल ब्रह्मचर्यके पालनसे ही परमगति हो जाती है। शक्ति और बल प्राप्त करनेके लिये व्यायाम करना तथा दूधका सेवन करना चाहिये। यह उत्तम वस्तु है। ब्रह्मचारीके लिये दूधके समान पौष्टिक कुछ नहीं है। ब्रह्मचारियोंको मिथ्या वचन नहीं बोलना चाहिये। सत्यको ही प्राण समझे और सबको परमात्माका रूप समझे।

साँच बराबर तप नहीं झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साँच है ताके हिरदे आप॥

अन्य बालकोंके साथ परस्पर प्रेमका व्यवहार करे, किसीको गाली न दे, लड़ाई नहीं करे, दूसरेकी वस्तु धूलके समान समझनी चाहिये। अपनेसे जो बड़े हैं, उनकी अपने शरीरसे सेवा करे, उनके चरणोंमें प्रणाम करे, उनकी आज्ञाका पालन करे, ब्राह्मण, देवता, गुरु आदि इनको नित्यप्रति प्रणाम करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे बहुत लाभ होता है। उनके आशीर्वादसे आयु-बलकी वृद्धि होती है, धर्म-पालनसे धर्मकी वृद्धि होती है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम्॥

शरीरसे बने उतनी माता-पिताकी सेवा करनी चाहिये, उनके विरुद्ध कोई काम नहीं करना चाहिये। यदि पुत्र अपने शरीरके चमड़ेकी जूती बनवाकर माता-पिताको पहनावे तो भी उनसे उऋण नहीं हो सकता।

माता-पिताकी सेवाके लिये भीष्मजीके आदर्श चरित्रका पालन करना चाहिये, जिसके कारण भीष्मजीको काल भी नहीं मार सका। माता-पिताकी सेवाके प्रभावसे उन्होंने परशुरामजीको

परास्त कर दिया। भीष्मजी शास्त्रके ज्ञाता, धीर, वीर पुरुष थे। पिताके सुखके लिये भीष्मजीने अपना सुख छोड़ दिया। पिताजी उनकी सच्ची भक्ति देखकर मुग्ध हो गये और उनको इच्छा-मृत्युका वरदान दिया। महाभारतमें भीष्मजीकी हार कहीं नहीं हुई। यहाँतक कि अपनी मृत्यु किस प्रकार होगी, यह उन्होंने अपने मुँहसे बतला दिया। भीष्मजीकी महिमा अद्भुत है। भीष्मजी जहाँ जाते थे, वहीं विजय होती थी। ब्रह्मचारीको इनका जीवन सदैव सामने रखना चाहिये।

ब्रह्मचारियोंको कुव्यसन, बीड़ी, तम्बाकू आदिसे बचना चाहिये। जो इनका सेवन करता हो, उसके संगसे बचना चाहिये। बस प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये *'दुष्ट संग जनि देइ बिधाता'* और यह भी कहे कि प्रभु मैं चाहता हूँ कि आपका ही स्मरण निरन्तर हो तथा राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि मेरे हृदयमें नहीं आवें।

माता-पिताकी परम सेवासे दुनियाका कोई भी कार्य दुर्लभ नहीं रहता है। वही बालक धन्य है जिसकी कीर्ति हो। अच्छे सुपात्र पुत्रके लिये श्रवणका आदर्श है। श्रवणकुमार माता-पिताकी सेवामें भगवान् रामसे बढ़कर है। मरते-मरते माता-पिताने श्रवणकी सेवाकी बड़ाई की और कहा कि इसने हमारी सेवाके लिये सब कुछ छोड़ रखा है। ऐसे सेवक पुत्रके बिना जीना बेकार है, इसलिये श्रवणकी सेवाके मोहमें माता-पिता जीवित ही मर गये। धन्य है श्रवणकी माता-पिताकी भक्ति। हमको विचार करना चाहिये कि माता-पिताकी सेवा करनेसे आज उनका नाम दुनियामें पवित्र हो रहा है और दूसरोंको पवित्र कर रहा है। इससे बालकोंको शिक्षा लेनी चाहिये।

अहंकारका नाश ईश्वरभक्ति और ज्ञान इन साधनोंसे हो सकता

है। यदि अहंकारका नाश हो जाय तो समझो सब दोषोंका नाश हो गया, यही सबका सरदार है। ज्ञानके द्वारा ज्ञानी समझता है कि यह सब नाशवान् है, इसलिये उसके अहंकार नहीं रहता—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

(गीता २। १८)

इस नाशरहित, अप्रमेय, नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं। इसलिये हे भरतवंशी अर्जुन! तू युद्ध कर।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(गीता २। ११)

हे अर्जुन! तू न शोक करने योग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है; परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।

आजकालकी पांच दिन जंगल होगा बास।
ऊपर ऊपर हल फिरे ढोर चरेंगे घास॥

शरीरकी यह दशा है आत्मा तो शरीरके नाश होनेपर भी नष्ट नहीं होता। भगवान् कहते हैं—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

(गीता २। २८)

हे अर्जुन! सम्पूर्ण प्राणी जन्मसे पहले अप्रकट थे और मरनेके बाद भी अप्रकट हो जानेवाले हैं, केवल बीचमें ही प्रकट हैं; फिर ऐसी स्थितिमें क्या शोक करना है?

धीर पुरुष इसलिये नहीं रोते हैं, भगवान् पुनः कहते हैं—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

(गीता २। २२)

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रोंको त्यागकर दूसरे नये वस्त्रोंको ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरोंको त्यागकर दूसरे नये शरीरोंको प्राप्त होता है।

संसारके भोगोंके लिये भगवान् कहते हैं—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

इसलिये भगवान् कहते हैं—अर्जुन तू शोक मत कर। रामचन्द्रजी ताराको भी यही उपदेश देते हैं—

छिति जल पावक गगन समीरा। पंचरचित अति अधम सरीरा॥
प्रगट सो तनु तव आगें सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥

रामचन्द्रजीके समझानेसे ताराको ज्ञान हो गया। इसलिये सोचना चाहिये कि शरीरमें अहंकार है, यह मूढ़ता है। ज्ञान होता है, तब अहंकार नहीं रहता। अहंकार तो देहको आत्मा माननेसे होता है। ज्ञान होनेपर बादमें शरीरके साथ कुछ मोह नहीं होता।

प्रश्न—भक्तिद्वारा अहंकारका नाश कैसे होता है?

उत्तर—जब वह भक्ति करता है, तब कहता है मैं दास हूँ,

तबतक कुछ अहंकार है। फिर कुछ समय बाद कहता है मैं तृण हूँ, तब भी कुछ रहता है। जब कुछ नहीं मानता, तब वह अहंकाररहित होता है। जब वह अपनेको सबसे कम मानता है तो अहंकारका नाश हो जाता है। यह शरीर घृणित है, हाड़-मांस आदिसे भरा हुआ है, रोगका घर है, क्षणभङ्गुर है—ऐसा सोचते रहनेसे अहंकारका नाश हो जाता है और भक्ति करनेसे तो सभी दुर्गुण चले जाते हैं।

प्रश्न—भगवान् जल्दी कैसे मिलें?

उत्तर—भगवान्के मिलनेकी बात तो वही बतला सकते हैं जो उनको मिले हुए हों या प्रभु जानें कि कैसे मिलते हैं। भगवान् मिलते हैं भगवान्की कृपासे। यद्यपि भगवान्की सबपर कृपा है, किन्तु हम मानते नहीं हैं, इसलिये फल नहीं होता। जो उनकी दया मानते हैं, उनको परम आनन्द होता है। भगवान्के मिलनेकी बात कठिन माननेसे कठिन और सरल माननेसे सरल हो जाती है। एक समय नारदजी वैकुण्ठ जा रहे थे। रास्तेमें एक वृक्षके नीचे एक आदमी भजन कर रहा था। उसने कहा—आप भगवान्से मेरे विषयमें भी पूछ लीजिये कि उसको कब दर्शन देंगे। नारदजीने कहा ठीक है। भगवान्के पास जाकर नारदजीने पूछा तो भगवान्ने कहा कि उस वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने वर्षोंमें दर्शन होंगे। नारदजी आये, उस भक्तने पूछा कि मेरी बात भी चली थी क्या? उन्होंने कहा चली थी, परन्तु भगवान्ने कहा कि उस वृक्षके जितने पत्ते हैं, उतने वर्षोंमें दर्शन होगा। उसी समय उसका भाव बदल गया। उसने कहा कि भगवान्ने कहा है कि इतने वर्षोंमें दर्शन होंगे। नारदजीने कहा हाँ तो वह नाचने लगा। भगवान्ने कहा है तब मिलेंगे तो सही, इस प्रकार आनन्दमग्न होकर नाचने लगा। इतनी मस्ती हो गयी कि उसी समय भगवान् प्रकट हो गये। नारदजीने कहा कि आपने क्या कहा

था? भगवान्‌ने कहा कि मैंने कहा था कि अभी जैसा साधन वह कर रहा है, ऐसा साधन रहा तो उतना समय लगेगा, किन्तु इसका साधन तो विलक्षण हो गया, यह प्रेममें मुग्ध हो गया तो मेरे आनेमें विलम्ब कैसे हो सकता है? प्रेमकी कमी ही आनेमें विलम्बका कारण है।

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥

प्रभुकी दयासे प्रभु मिलते हैं, अपनेपर जो प्रभुकी दया मानते हैं, उन्हें भगवान् मिलते हैं, केवल प्रेमसे ही मिलते हैं। भगवान्‌की शरण होनेसे श्रीभगवान् मिलते हैं।

हे नाथ! हे प्रभु! तुम्हीं शरण लेओ, हमारा कोई नहीं है। जिस प्रकार अर्जुनने गीतामें कहा है—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २।७)

कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

शरण होनेसे भगवान्‌ने उपाय भी बताया और दर्शन भी दिये। इसलिये एकान्तमें गद्गद होकर रोना, प्रार्थना करनी चाहिये, किन्तु एक बातका ध्यान रखना चाहिये कि बाहरके रोनेसे भगवान् देरमें आते हैं और सच्चे हृदयसे रोनेसे भगवान् शीघ्र आते हैं। यदि कहो कि हमको रोना नहीं आता तो समझो तुम भगवान्‌को चाहते नहीं, भगवान्‌को चाहोगे तो रोना आयेगा ही। बिना गरज कोई रोयेगा नहीं और सच्चा रोना हुआ तो भगवान् शीघ्र मिलेंगे।

सदैव भगवान्‌का साथ अनुभव करते रहो

सदा सर्वदा परमात्माको ही याद करना चाहिये। जिस प्रकार गोपियाँ पत्ते-पत्तेमें अपने इष्टदेव भगवान्‌का दर्शन करती थीं, ऐसे ही भगवान् हमारे साथ गुप्तरूपसे चलते-फिरते, उठते-बैठते हैं, सदा ही साथ रहते हैं, ऐसा अनुभव करते रहो।

भगवान्‌को हर वक्त याद रखनेका उपाय यह है कि ज्यादा-से-ज्यादा नाम-जप और सत्संग करना चाहिये। नाम-जप भी याद नहीं आवे तो मालाकी संख्या बढ़ानी चाहिये। वैराग्य करनेसे भगवान्‌का ध्यान अच्छा होता है और ध्यानका अभ्यास भी होता है। इस प्रकार भगवान्‌को थोड़ा-थोड़ा देखेंगे तो फिर अधिक हो जायगा।

भगवान्‌की आज्ञापालनका क्या उपाय है? भगवान्‌की आज्ञा हमें इस प्रकार मिलती है—महापुरुषोंद्वारा, शास्त्रद्वारा या हृदयद्वारा प्रेरणा। भगवान्‌की आज्ञाके ये तीन द्वार हैं। भगवान् जो कुछ विधान करें उसमें प्रसन्न रहे। विधान यही कि जो कुछ सुख या दुख आकर प्राप्त हो, उसमें संतुष्ट रहे।

नया कर्म तो करो, भगवान्‌की आज्ञा सामने रखकर करो। पुराने कर्मोंका जो भोग है, उसको भगवान्‌की आज्ञा समझो। इस प्रकार समझनेपर शीघ्र कल्याण हो सकता है।

संसारी सुख होता है वह तो ठीक ही है, किन्तु दुःखमें भी प्रसन्न रहना चाहिये, क्योंकि यदि भगवान्‌के कार्यमें त्रुटि देखी तो बड़ा नुकसान होगा। जो भी दुःख होवे, उसको आनन्दपूर्वक

स्वीकार करो। यदि दुःखसे रोकर भगवान्‌की त्रुटि देखी या कही तो जन्म-मरण होगा।

जितने संसारी सुख हैं, उनको हम भगवान्‌की कृपा समझते हैं, किन्तु दुःख भी उनकी कृपा है, केवल रूप ही बदल दिया है। हमको बुलानेके लिये भगवान्‌ने ये संसारी सुख-दुःख भेजे हैं। उनका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये। स्त्री-पुत्र आदि साधन हैं, साधन इस प्रकार कि इनको भगवान्‌के मार्गमें लगा देवें। यानी हमको मददके लिये दिये हैं, ऐसा सोचकर उनको सेवामें लगा देवें।

प्रारब्धके भोगमें यदि दुःख आये तो प्रसन्न होना चाहिये। कोई भी व्याधि होवे, शरीरमें कष्ट होवे तो ऐसा सोचना चाहिये कि उत्तम कर्म, सेवा, तप, भजन आदिमें तो परिश्रम करना पड़ता है, उससे भी अधिक लाभ उसमें होगा कि हम दुःखको तप मानने लगें। व्याधिसे पूर्वका पाप तो नाश हुआ ही और उससे परम तपका फल भी मिला, क्योंकि जप-तप तो करना पड़ता है और यह तप तो हमारा प्रारब्ध ही है, ऐसा सोचकर उसको परम तप मान लें। केवल माननेसे ही वह व्याधि परम तप हो जाती है। इसलिये भगवान्‌की राजीमें अपनी रजा रहनी चाहिये। हमको तो भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये कि हे भगवन्! तुमको जो भुगताना हो खूब भुगताओ, प्रभु बाकी मत रखना। भीष्मजी कहते हैं, प्रार्थना करते हैं—हे भगवन्! मैंने जितने पाप किये हैं, वे सब पाप शरीरमें अभी आ जायँ, मैं चुकानेको तैयार हूँ, एक रत्ती भी बाकी न रहे, अभी सब पाप भुगताकर मेरा खाता चुकता कर दें और अब मेरा खाता मत डालना, आपको बड़ी तकलीफ होती है।

मानसिक दुःख, शोक, चिन्ता करना बिलकुल मूर्खता है, ये

नहीं करना चाहिये। भगवान् अर्जुनसे कहते हैं—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

(गीता २।११)

तू न शोक करनेयोग्य मनुष्योंके लिये शोक करता है और पण्डितोंके-से वचनोंको कहता है; परंतु जिनके प्राण चले गये हैं, उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं, उनके लिये भी पण्डितजन शोक नहीं करते।

यह ध्यानमें रखना चाहिये कि चिन्ता, शोक प्रारब्धसे होता तो ज्ञानीको भी होता, किन्तु ज्ञानीको नहीं होता। अहंकार, भयका कारण अज्ञान है। यदि हम राग-द्वेषको प्रारब्ध मान लें तो यह तो मिटेंगे ही नहीं, पर यह अज्ञानसे होते हैं और ज्ञान होनेपर नष्ट हो जाते हैं। ये हमारे घरमें चोर हैं, इनको निकाल बाहर करो और निश्चिन्त हो जाओ। भाइयो! यदि रोनेसे पाप घटते हों तो दो-चारको बुलाकर साथ ही रोना चाहिये, किन्तु यह खयाल रखो कि रोनेकी प्रथा तो मूर्खतासे चालू हुई है और उपदेश द्वारा चिन्ता मिटाना—यह उसकी औषधि है। प्रत्येक शास्त्र जगह-जगह कहते हैं—शोक नहीं करना चाहिये, शोक करना मूर्खता है।

भक्त सर्वत्र भगवान्‌को देखता है और उन्हींके साथ क्रीड़ा करता है

भक्तिमार्गवालेके लिये बड़े आनन्दकी बात है, बड़ी सरल बात है। संसार जो है उसको फुलवाड़ी यानी बगीचा समझो, यह फुलवाड़ी प्रभुने लगायी है। प्रभु इसमें समय-समयपर क्रीड़ा करने आते हैं और संसारमें क्रीड़ा करके चले जाते हैं, समझा जाते हैं। जो इनके प्रेमी हैं वे सदा इनकी क्रीड़ा देखा करते हैं। प्रेमियोंके लिये न तो आते हैं न जाते हैं, वे सदा रहते हैं।

कोई वृन्दावनको प्रभुका निज धाम समझते हैं और प्रभु वहाँ नित्य क्रीड़ा करते हैं ऐसा मानते हैं। जिनकी दृष्टि शुद्ध हो जाती है, उनकी दृष्टिमें सर्वत्र वृन्दावन-ही-वृन्दावन है और उनसे बढ़कर वह भक्त हैं, जो सदा प्रभुके साथ क्रीड़ा करते हैं।

प्रश्न—दूसरोंको कैसे मालूम हो कि प्रभु क्रीड़ा कर रहे हैं?

उत्तर—उनकी क्रीड़ा सबको दीखे तो मुश्किल ही क्या रही। प्रभु निराकाररूपसे तो हैं ही, किन्तु जो बहुत प्रेमी हैं, उनको नेत्रोंसे भी दिखायी देते हैं। प्रेमी जो कुछ भी देखते हैं, सब प्रभुकी क्रीड़ा ही देखते हैं। वे प्रभु सब जगह विराजमान हो रहे हैं, अतः सदैव उनको देखते रहें, बस और कुछ नहीं, भगवान् दर्शन दें या न दें हमको तो आनन्द मानना ही चाहिये और संसारको उनके नाटकके रूपमें देखें।

वह प्रभु बाजीगर हैं और हम झमूरे हैं। संसार उस प्रभुकी बाजीगरी है। बाजीगर पूछता है, झमूरे! क्या मौज है? झमूरा कहता

है हाँ मौज है। वह बाजीगर भी मुग्ध, झमूरा भी मुग्ध और देखनेवाले भी मुग्ध। ऐसा करते-करते भगवान् प्रकट भी हो जाते हैं। नहीं भी प्रकट होवें तो हमारी शान्ति, आनन्द तो कहीं गया नहीं है। इस प्रकार जो जीवन बिताता है, उसको संसारका व्यवहार, रुपया-पैसा सब धूलके समान लगता है, उसको मिट्टी और सोना बराबर लगता है।

ज्ञानमार्गमें प्रतीत होता है कि प्रभुका विज्ञानानन्दघन स्वरूप है। उसमें उसी प्रकार तन्मय हो जाय। जैसे अज्ञानी देहमें तन्मय रहता है, यानी आकाशसहित समस्त ब्रह्माण्ड आनन्दमय बन जाय।। चारों ओरसे संसारको शरीरसहित समान भावसे, सबमें देखे, वह निराकार बोधरूप है।

स्वप्नस्थ पुरुष जाग्रत् होनेपर स्वप्नको संकल्पके अन्तर्गत देखता है, इसी प्रकार हमको सब संकल्पमात्र समझना चाहिये। जैसे कोई नेत्र बंद करके देवताकी मूर्ति संकल्पके आधारपर देखता है, इसी प्रकार वह संसारको संकल्पके आधारपर देखते हुए स्वयं विज्ञानमय, आनन्दमय होकर आनन्दरूप हो जाता है। प्रभु और उसका दो रूप नहीं है। उसको संसार कुछ भी प्रतीत नहीं होता। जो इस प्रकार द्रष्टा साक्षीरूपमें देखता है, वह आनन्दमय हो जाता है। यह ज्ञानी साधकके लिये उत्तम उपाय है।

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतःश्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है। क्योंकि वह संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित है।

वह प्रभु यहाँ वर्तमान है, यदि कोई श्रद्धा-प्रेम करे तो तुरन्त प्रकट हो जाते हैं, किन्तु हम तो कहतेमात्र हैं, वास्तवमें श्रद्धा-प्रेम नहीं करते, यदि श्रद्धा-प्रेम करें तो वह बलात् आता है। उसके लिये पूजा-सामग्री रखो या न रखो, वह तो प्रेमसे आता है। सूखा पत्ता लेने प्रेमसे आता ही है। प्रेम ऐसा होवे जैसे नारदजीकी बात सुनकर वह वृक्षके नीचे बैठा हुआ भक्त प्रसन्न होकर नाचने लगा। आनन्द यह कि भगवान् मिलेंगे, ऐसा भाव होना चाहिये, फिर भगवान् प्रकट होते हैं और प्रत्यक्ष दर्शन देते हैं।

विश्वास दिलानेकी बात तो यह है कि भगवान्‌की दयाको मानकर और उसके आधारपर मान सकते हैं कोई आश्चर्यकी बात नहीं है। यदि हम यहाँ गंगाजीकी कृपासे मान लें तो भी गुंजाइश है। बात यह है कि कोई भी आसरा लेकर मान लेना चाहिये कि हमको भगवान् दर्शन देंगे और हम उनसे मिलेंगे और अवश्य मिलेंगे। यदि इस बातको मान लेवें तो और शीघ्र मिल जायँ।

बस भगवान्‌से यही कहना चाहिये कि आपका वैकुण्ठ हमको नहीं चाहिये। हमको तो सब दुनिया वैकुण्ठ हो जाय ऐसा चाहिये, यदि ऐसा नहीं हो तो मैं जहाँ जाऊँ, जहाँ रहूँ, वहाँ मुझे वैकुण्ठ दीखे। भगवन्! यही प्रार्थना है कि मैं पातालमें, नरकमें कहीं भी रहूँ, मुझे तो बस यही प्रयोजन है कि सर्वत्र आनन्दमय हो जाय और कुछ नहीं, बस हम तुमको सदा सबमें देखा करें, यह निश्चय रहे। तुम भले ही आँखोंसे मत दीखो, पर बुद्धिमें तो तुम बने ही रहो। निरन्तर आपके गुणानुवादमें हमारा समय बीते। प्रभु! आपके प्रेमके प्रभावकी बातें होती रहें और हम सुना करें, हमारा जीवन बीतता रहे, जहाँ जावें वहीं सुननेको मिले तो बस गीताके इस श्लोकके अनुसार बना दो—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

यही बस यही चाहिये, इसके सिवा और तुम्हारी चीजें तुम्हारे पास रखो। भगवन्! बस ऐसा खेल हो कि तुम भी वशीभूत हो जाओ और तुमको कुछ भी नहीं सुहावे, बस यही चाहिये।

भगवन्! हमको कोई भी बाधा नहीं है। यदि बाधा है तो उसमें रहस्य है और वह यह कि हमारा प्रेम बढ़नेके लिये है। भगवान्से प्रेमसे लड़ा करें कि तुम बाधा दो, देते रहो और मेरा प्रेम बढ़े। बस लड़ा करो तो बाधा ही तुम्हारा साधन हो जाती है।

खयाल करनेकी बात है कि बातोंसे ही प्रसन्नता होती है तो वैसी स्थिति होनेपर क्या होता होगा। अहा धन्य है। भगवान्से कहना चाहिये कि हमको तो सत्संग चाहिये—

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

बस इसके बाद हमको दर्शन और मुक्ति नहीं चाहिये। ऐसी हालत हो जाय कि भगवान् हमको दर्शन देनेके लिये तरसा करें और हम उन्हींके गुणगान गाया करें। यदि हमारे गुण गाते-गाते ही वह आ जायँ और कहें कि बस दर्शन कर लो तो उनको कह देना चाहिये कि अभी तो हम आपके गुण गा रहे हैं, दर्शन फिर कभी

आकर दीजियेगा। भगवान् सोचेंगे कि अहा कैसा प्रेमी है, मेरेको नहीं चाहता और मेरी बात करनेमें लीन हो रहा है। उनसे तो बस यही कहना चाहिये कि भगवन्! ऐसी प्रेम-प्रभावकी बातें हों कि आप भी सुननेके लिये लालायित रहें। बस बारम्बार रोमाञ्च-गद्गद होता रहे तो फिर भगवान्‌को आनेमें कुछ भी देर नहीं है।

भगवान् यमुनातटपर गोपियोंको मिले थे और यहाँ तो गंगातट है। जो गंगा साक्षात् भगवान्‌के चरणोंसे निकली है, इसलिये गंगाजी तो जमुनाजीसे भी बढ़कर है। यहाँ उत्तराखण्डमें भगवान् साक्षात् विराजमान हैं, सत्संग हो रहा है, गंगाजीकी दया है, फिर क्या शंका है। प्रभुकी दया भी है ही। वे चाहते हैं कि मैं प्रकट होऊँ, मैं प्रकट होऊँ और हमको शकुन भी उत्तम हो रहे हैं। इसका आधार यह है कि रोमाञ्च हो रहा है, भरतजी कहते हैं—

जन अवगुन प्रभु मान न काऊ । दीनबन्धु अति मृदुल सुभाऊ॥

वहाँ भरतजीसे मिलनेके लिये पहले हनुमान्‌जी आये। भरतजी कहते हैं—

मोरे जियँ भरोस दृढ़ सोई । मिलिहहिं राम सगुन सुभ होई॥

ऐसा कह ही रहे थे कि हनुमान्‌जीने आकर धीरज दिलाया, किन्तु अब तो भगवान् हनुमान्‌जीको भी बिना भेजे, बिना विलम्बके स्वयं ही आते हैं।

हमको विश्वास रहे कि प्रभु हमारे अपराध नहीं देखते और अवश्य आवेंगे, जैसा भरतजीको विश्वास था। प्रभु दयालु हैं, कोमल हैं, हमारी करुण पुकारको वे सहन ही नहीं कर सकते, यदि हमारे हृदयमें करुणभाव होवे तो उनको आनेमें विलम्ब होना ही नहीं है। बस भरोसा पूरा रहे कि भगवान् मिलेंगे।

नारायण! नारायण! नारायण!

सदावर्त बाँटनेवाले भगवान्से हमारी मित्रता

अब तो यही बात सबसे अच्छी मालूम देती है कि सारे दिन वैराग्ययुक्त चित्तसे भगवान्का ही चिन्तन करें, दूसरेका करें ही नहीं। भगवान्का चिन्तन अमृत है और संसारका चिन्तन विष है। यदि संसारका चिन्तन करना है तो रूप बदल दें, यानी सारे संसारको भगवान्के रूपमें देखें तो कोई आपत्ति नहीं है, यदि प्रतीत नहीं होवे तो भी परमात्माको ही सर्वत्र देखें। भगवान् कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

जो पुरुष सम्पूर्ण भूतोंमें सबके आत्मरूप मुझ वासुदेवको ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतोंको मुझ वासुदेवके अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।

नित्य निरन्तर भगवान्का ही चिन्तन करे। मनसे कहना चाहिये कि मूर्ख ऐसे प्रभुका चिन्तन छोड़कर संसारका चिन्तन करता है, अरे संसारका चिन्तन करना हृदयमें कंकड़-पत्थर भरना है। हमारे पूर्वके कंकड़-पत्थर निकालकर उसमें रत्न भरना चाहिये, भगवान्का नाम, रूप, गुण, प्रेम ये रत्न हैं, इनको हृदयमें भरना चाहिये।

प्रश्न उठता है कि मन संसारका फालतू चिन्तन क्यों करता है? बात यह है कि पूर्वाभ्यासके कारण और मूढ़तासे उसका चिन्तन होता है। सत्संग और संसारसे वैराग्य तथा उपरामता—इनसे स्वाभाविक ही व्यर्थ चिन्तन त्याग होता है। भगवान्के एक-

एक शब्दपर ध्यान दो, देखो भगवान् कहते हैं—

'अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलमसङ्गशस्त्रेण दृढेन छित्त्वा'

(गीता १५। ३)

इस संसाररूपी 'अश्वत्थ' वृक्षको काटनेके लिये बड़े भारी वैराग्यकी आवश्यकता है। वैराग्यके द्वारा इसका नाश करना और उस परमात्माके शरण होना चाहिये। सबसे बड़ी शरण तो उनका निरन्तर चिन्तन करना ही है।

यहाँ तो संसारको उड़ाकर भगवान्‌ने निरन्तर चिन्तनसे भगवान्‌की प्राप्ति बतलायी है। भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

भगवान् कहते हैं मेरे भक्तोंका कभी नाश नहीं होता। **'न मे भक्तः प्रणश्यति।'**

हमको विचार करना चाहिये कि हम संसारमें क्यों फँसे हैं? विचार करनेसे मालूम पड़ता है कि कोई भी कारण नहीं है। जब कोई भी कारण नहीं है तो हम इस परमात्मरसको क्यों छोड़ रहे हैं? खयाल रखो ऐसा रस स्वर्गादि पदार्थोंमें नहीं है। स्वर्गादि भी क्षणिक और नाशवान् हैं, विषयोंमें रमनेवालेको नरक होता है। ऐसे नारकीय पुरुषोंको धिक्कार है जो विषय भोगकर पाप करते हैं।

जो भगवान्‌के भजन-ध्यानमें बाधक होवें उनका भी त्याग कर देना चाहिये, किन्तु प्रभुका त्याग नहीं करना चाहिये। जिसने

एक क्षण भी प्रभुका ध्यान कर लिया है, उसने पृथ्वीका दान और बड़े-बड़े पुण्य कर लिये हैं।

उत्तम कर्म भी यदि भगवान्‌के निमित्त करे तो उत्तम है, अन्यथा उत्तम कर्मसे स्वर्गके सिवाय और कुछ नहीं मिलता, जो कि नाशवान् है। उत्तम कर्म वही है जिसमें प्रभुका स्मरण हो। यदि हम उनके काममें आते ही नहीं तो सारे कार्य भाररूप हैं, स्वर्ग भी बन्धन सरीखा है। नरक लोहेकी बेड़ी है और स्वर्ग सोनेकी बेड़ी है। अहा उनका जन्म सफल है जिनके हृदयमें रामभक्ति बसती है।

राम भगति मनि उर बस जाकें। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताकें॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसइ भगति जाके उर माहीं॥
गरल सुधासम अरि हित होई। तेहि मनि बिनु सुख पाव न कोई॥

भगवान्‌की भक्ति बिना कहीं सुख नहीं है। वह जो रसराज है, आनन्दकन्द है, उसका पान करता रहे, जिसके दर्शन, स्पर्श, भाषण, चिन्तनसे पापोंका नाश हो जाता है। इस प्रकार जिसका भाव है वह जीते-जी मुक्त है। अतएव चलते, फिरते, उठते, बैठते, सोते, जागते, खाते, पीते भगवत्स्वरूपका दर्शन करते हुए मुग्ध रहना चाहिये। ऐसा तल्लीन रहना चाहिये कि देश, काल, शरीरतकका भी ज्ञान नहीं होवे, बस उसका जन्म सफल हो गया।

अब प्रभु नहीं आवें तो क्या हानि है? बस ऐसी स्थिति हो जानी चाहिये, यही उसकी प्राप्ति है। प्रभुके ध्यानकी मस्तीमें कितना आनन्द है? अहा दुनियामें उसके लिये कोई उदाहरण नहीं है। उसका चिन्तन करते-करते ऐसा आनन्द होता है, जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता। यदि उस साधकके द्वारा संसारका थोड़ा-सा भी चिन्तन होता है तो उसको बड़ा पश्चात्ताप होता है। भला जिसका परमात्माके चिन्तनमें दिल लगा है, वह संसारका चिन्तन

क्यों करेगा, यानी कर ही नहीं सकता। जब भगवान्‌के प्रेममें तन्मय हो जाता है तब भले ही उसका शरीर काट डालो वह तो मस्त रहता है। इसलिये हमें भी इसी प्रकारकी स्थिति बनानी चाहिये। ऐसी स्थिति तत्परतासे होती है। यहाँ तपोभूमि और गंगातट है, किन्तु हमें विलम्ब इसलिये होता है कि हम समयका मूल्य नहीं समझे हैं। इसके लिये बार-बार प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये। जिस क्षण हमको समयकी कीमत मालूम होगी, तब हमारी आँख खुलेगी, तब मालूम पड़ेगा कि हमारा एक क्षण भी मुक्तिके बराबर नहीं होगा। वहाँ तो एक क्षणमें मुक्तिका सदावर्त लग जाता है।

किसीके पास अटूट धन है और उसने सदावर्त लगाया है, वहाँ बहुत-से लोग भोजन पाते हैं। जिसने सदावर्त लगाया है, उससे हमारा बहुत प्रेम है। उसके पास जितना रुपया है उतना मेरे पास भी है और साथ-ही-साथ हम दोनों रुपयोंको धूल समझते हैं।

कोई भूखेको कहो कि जा वहाँ सदावर्त मिलेगा तो वह बड़ा खुश होगा। यदि हमको कोई कहे कि भाई एक मुट्ठी चना ले लो तो भला हम कब लेंगे। ऐसे ही सदावर्तवालेके साथ हमारा संग रहे, बस यही चाहना होनी चाहिये, यदि उस प्रेमीसे हम एक मुट्ठी चना माँगें तो वह कहेगा वाह रे मूर्ख! क्या एक मुट्ठी चना ही तुझे मेरे साथ रहते अच्छा लगा।

बस ऐसे सदावर्त बाँटनेवाले भगवान्‌से हमारी मित्रता हो गयी, पहचान हो गयी, तो क्या वे हमको नीचे गिरने देंगे। एक मुट्ठी चना (मामूली संसारी भोग) लेने देंगे? नहीं वे तो अपने साथ (परमधाम) में ही प्रेमसे भोजन (आनन्दमय अमृतरस) करायेंगे। अहा! धन्य है ऐसे पुरुषोंको, हमको भी प्राणपणसे ऐसा ही बनना चाहिये।

नारायण! नारायण! नारायण!

ध्यानसहित नामका जप सोनेमें सुगन्ध है

जिस किसी प्रकार होवे, मन उस परमात्माके नाममें (जो इष्टदेव हों) रहे, तभी उत्तम है, साथ-ही-साथ स्वरूपका ध्यान होवे तो सोनेमें सुगन्ध है और यदि श्वासद्वारा जप होता हो तो और भी उत्तम है। खास बात तो यह है कि अपने अनुकूल पड़े और जिसमें मन लगे, शान्ति, प्रसन्नता हो, उसी प्रकारका वही जप करना चाहिये। मनसे अभ्यास करनेपर जिस प्रकारसे प्रसन्नता हो, बस वही जप करना चाहिये। जप व्यवहारकालमें चलते-फिरते नासिका श्वासद्वारा मनसे और ध्यानसहित करना चाहिये। एकान्तमें श्वासद्वारा जो युक्तियाँ बतलायी गयी हैं उसी प्रकार करना चाहिये।

प्रश्न—क्या मन स्थिर हो जाता है?

उत्तर—हाँ, पापोंके नाशसे हो जाता है, किन्तु कुछ समय लगता है। ध्यान महत्त्वका विषय है और भगवान्‌की मूर्ति वही हो जिसमें मन रमे, मानसिक जपमें तो मूर्तिपर ही मन ठहरेगा, यदि मन इधर-उधर चला जाय तो मन चित्रपर लगा देना चाहिये तथा मानसिक मूर्तिका ध्यान करे तो और उत्तम है।

प्रश्न—क्या मन स्फुरणासे रहित होता है?

उत्तर—हाँ! ऐसा होता है कि मन रुक जाता है। बुद्धि भगवान्‌के लक्ष्यको पकड़ लेती है। वहाँ परमात्मा ध्येय हैं और साधन करनेवाला ध्याता, ध्यान हो रहा है, फिर समाधि और बादमें सब एक ही हो जाते हैं, यानी केवल परमात्ममय हो जाता है।

यह जीवात्मा आत्मकल्याणके लिये आया था, इसलिये पहले यही करना चाहिये। जीवात्माका किसीसे सम्बन्ध नहीं है, इसलिये जिस कामके लिये आया है, पहले वह कर लेना चाहिये। यानी यह आया है परमात्माकी प्राप्तिके लिये। परमेश्वरने यह मौका दिया है। पहले भी परमात्माने कई बार मौका दिया, तब इसने कुछ नहीं किया, इसलिये परमात्माने फिर दया करके मौका दिया है। कल्याण होता है भगवान्‌की शरणसे, भक्तिसे, ज्ञानसे, इसलिये हमको कटिबद्ध होकर प्राणपर्यन्त चेष्टा करके परमात्माको प्राप्त कर लेना चाहिये।

उत्तराखण्ड, गङ्गाजीका तट, गङ्गारेणुकाकी महिमा

निराकार स्वरूपके ध्यानके लिये उत्तम देश-कालकी आवश्यकता होती है। देश तो हमारा यहाँ उत्तम है ही, एकान्त भी है और पवित्र भी है, इसीसे ध्यानमें मदद मिलती है।

यहाँ उत्तराखण्डमें वैराग्य और ज्ञानके परमाणु लहराते रहते हैं। आप सूर्योदय तथा सूर्यास्तके समय यहाँ गंगाजीके तटपर ध्यान लगाकर अनुभव कीजिये तो मालूम पड़ेगा कि यहाँ सरीखा ध्यान और कहीं नहीं लगता और एक बात यह भी है कि गंगाजीकी ध्वनिमें ध्यान भी विशेष लगता है। यहाँकी रेणुका भी सहायक है। यहाँकी रेणुकामें यदि मृत्यु होवे तो परमगति होती है। इसलिये यहाँ सबको भुलाकर एकमात्र विज्ञानानन्दघन परमात्माके सिवाय और कुछ नहीं रहे।

यहाँ तो यदि वैश्या भी आ जायेगी तो उसकी भी स्वाभाविक ही शुद्ध वृत्ति हो जायगी। अब हमको जो आसन अनुकूल पड़े, स्वस्तिक, सिद्ध या पद्मासन लगाकर नेत्र बंद कर लेना चाहिये और जब भगवत्-चर्चामें मन लगा हुआ होता है, तब आलस्य भी नहीं आता। जिसको आलस्य आता है वह अज्ञानी है, यानी समझकी कमी है। किन्तु जो इस विषय (ध्यान) को समझेगा उसे आलस्य ही नहीं आयेगा। ऐसा निश्चय कर लेना चाहिये कि जहाँ ज्ञानका श्रवण, मनन और अध्ययन होता है, वहाँ आलस्य

तो आ ही नहीं सकता। फिर भी आलस्य आये तो समझो कि सुननेवालेकी रुचि नहीं है।

जहाँ इस प्रकारका प्रकरण चलता हो, वहाँ नेत्र बंद करनेपर प्रसन्नताकी तो बाढ़ आने लगती है। विज्ञानानन्दघन प्रतीत होता है विशेष ज्ञान तथा विशेष आनन्द होता है। इसलिये बाहरके विषयको छोड़कर मनमें भी कोई चिन्तन नहीं करना चाहिये, यदि मन कुछ गड़बड़ करे तो समझाना चाहिये—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।

(गीता २। १८)

नित्यस्वरूप जीवात्माके ये सब शरीर नाशवान् कहे गये हैं।

संसार अनित्य है, नाशवान् है। जैसे मरुभूमिमें जल बिना हुए ही दीखता है, वैसे ही यह संसार बिना हुए ही दीखता है।

जिस प्रकार स्वप्नसे जागनेपर स्वप्नका अभाव हो जाता है, इसी प्रकार ज्ञान होनेपर अज्ञान नहीं रहता। जागनेवालेकी दृष्टिमें स्वप्नका विचार होता है और सोचता है कि वहाँ था तो कुछ नहीं, मेरा संकल्पमात्र था, परमात्माके स्वरूपमें जागनेपर तो उठने-जागनेके भाव होते ही नहीं। हमको स्वप्न होता है और आँख खुलनेपर हम भूल जाते हैं, याद करनेपर भी कभी-कभी याद नहीं आता, इसी प्रकार परमात्माके स्वरूपमें जागनेपर उसको तो कुछ भी याद नहीं आता कि मैं (अज्ञानमें) सोया था। उस ज्ञानीकी दृष्टिमें संसार है ही नहीं और संसारमें उनके जीवनका आधार प्रारब्ध ही है और इसीलिये उनका शरीर बना हुआ है।

जीवन्मुक्त संसारके लोगोंकी दृष्टिसे उपदेश करता है, क्योंकि उनकी देहसे यह कार्य होता है, किन्तु उनके स्वत:के लिये कुछ नहीं है। जैसे भोजन भूखके लिये होता है, किन्तु जीवन्मुक्तका

उद्देश्य कुछ नहीं होता, उसकी स्फुरणासे ही कार्य होता है।

उन महात्माओंका भाव यह नहीं होता कि मैं किसीको उपदेश दूँ, किन्तु लोगोंकी श्रद्धा प्रेम ही फल आरम्भ कर देता है। उनके प्रत्येक कार्यमें लोकसंग्रह होता है, यानी लोगोंको केवल उनके ही कल्याणके लिये उन्मार्गसे बचाकर सन्मार्गपर लाते हैं। जिस प्रकार जागनेवाला स्वप्नका उपदेश नहीं दे सकता, यह असम्भव है, ऐसे ही ब्रह्ममें जागे हुए पुरुष संसाररूपी स्वप्नका उपदेश नहीं देते, क्योंकि ब्रह्ममें जागनेपर तो संसारका अभाव ही हो जाता है। मन-बुद्धि शुद्ध है और ब्रह्मको स्पर्श कर चुका है तथा उसका अभिमानी भी पवित्र हो चुका है, उसको संसार स्वप्नवत् प्रतीत हो रहा है। मन, बुद्धि, शरीरका उसके हृदयमें अभाव है और उपदेशमें तो उसका कोई अभिमानी नहीं है, फिर भी कोई जो कुछ पूछता है, उसका उत्तर वे दे देते हैं, उसमें भी जैसी स्फुरणा हुई, वैसा कह देते हैं, क्योंकि सबके अधिष्ठान जो परमात्मा हैं, वही उनके हृदयमें हैं। इतना होते हुए भी उनके हृदयमें उपदेशकी बात नहीं आती। संसारमें जो अज्ञानी हैं, जिज्ञासु हैं, उनकी श्रद्धा और प्रेम देखकर परमेश्वर उस ज्ञानी पुरुषके द्वारा काम ले लेते हैं। वह ज्ञानी है उसके शरीरसे सब काम होते हैं, किन्तु वह तो भुने हुए बीजके समान है।

लोग देखते हैं कि उनके द्वारा क्रिया होती है और प्रारब्धका भोग भी होता है। यह लोगोंकी दृष्टिमें ही होता है, किन्तु ज्ञानीकी दृष्टिमें कुछ नहीं होता।

जो परमात्माको भूल जाय वह अज्ञानी है और निद्रा, आलस्य, प्रमाद—यह मोह है, किन्तु ज्ञानीको निद्रा, आलस्यसे कोई मोह नहीं होता। उसकी स्वाभाविक वृत्ति अधिक या कम जो होती है

वह अवस्था पाकर होती है और अन्न नहीं मिले तो भी होती है।

परमात्माकी प्राप्तिरूप प्रकाशमें सदैव वह स्थित है, परमात्मा उसके हृदयमें विराजमान हैं, वह बुद्धिके निश्चयसे हटते नहीं, क्योंकि साधनकालमें ही उसका निश्चय हो जाता है।

ध्यानमें प्रकाशकी दीप्ति होती है। जो ब्रह्मको प्राप्त हो गया वह ज्ञानरूप ही है। इस शरीरसे उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। उसकी बुद्धिसे भी निश्चय होता है और उसके हृदयमें राग-द्वेष नहीं होते तथा उसके नवीन कर्म नहीं होते।

उनके मोहका नाश हो गया है क्योंकि वह '**प्रशांतमनसम्**' है। '**सर्वभूतस्थमात्मानम्**' वह ऐसे सुखको प्राप्त होता है और यही परमात्माके समीप पहुँचे हुएका लक्षण है। आत्माको सारे भूतोंमें और आत्मामें सारे भूतोंको देखता है, यानी समानदृष्टिसे देखता है। यह तो व्यवहारकालमें होता है और ध्यानकालमें तो किसीका चिन्तन नहीं करता (गीता ६। २५)। इस साधनकी सिद्धिमें वहाँ संसारका अभाव हो जाता है और फिर वह '**ज्ञान-निर्धूतकल्मषः**' हो जाता है। ऐसे पुरुष संसारमें बहुत कम होते हैं। '**यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम्**' वाला पुरुष '**विनिवृत्तकामः**' है और इसीलिये ब्रह्ममें स्थितिवाला पुरुष विचलित नहीं होता। जैसे जागा हुआ पुरुष स्वप्नसे विचलित नहीं होता। भगवान्‌ने कहा है—

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप

जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

तत्त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः।
गुणा गुणेषु वर्तन्त इति मत्वा न सज्जते॥

(गीता ३। २८)

हे महाबाहो! गुणविभाग और कर्मविभागके तत्त्वको जाननेवाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बरत रहे हैं, ऐसा समझकर उनमें आसक्त नहीं होता।

परमात्मप्राप्तिके बाद तो संकल्प भी नहीं रहता, किन्तु स्वप्नके बाद जाग्रत्वालेको रहता है, यह इनमें परस्पर विशेषता है। जिसको ज्ञान है वह किसीको अज्ञानी नहीं मानता, लोग उसको ज्ञानी मानते हैं।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम्॥

(गीता १३। १७)

वह परब्रह्म ज्योतियोंका भी ज्योति एवं मायासे अत्यन्त परे कहा जाता है। वह परमात्मा बोधस्वरूप, जाननेके योग्य एवं तत्त्वज्ञानसे प्राप्त करनेयोग्य है और सबके हृदयमें विशेषरूपसे स्थित है।

चेतनको समझानेके लिये वह परमात्मा सबके हृदयमें विराजमान है।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

(गीता २। २०)

यह आत्मा किसी कालमें भी न तो जन्मता है और न मरता है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होनेवाला ही है; क्योंकि यह

अजन्मा, नित्य, सनातन और पुरातन है, शरीरके मारे जानेपर भी यह नहीं मारा जाता।

भूत, भविष्य, वर्तमानके नाश होनेपर भी उनका नाश नहीं होता। प्रकृतिका नाश हो जाता है, वह परमात्मा भौतिक प्राकृत देश-कालसे रहित है। वह मायाको भी सत्ता देनेवाला है और कालका भी काल है।

भौतिक आनन्द तो जड़ है और परमात्मविषयक आनन्द जाननेका विषय नहीं है, अद्भुत है, विलक्षण है।

ज्ञान बुद्धिके भीतरका प्रकाश, चेतनता तथा सुख—प्रसन्नता आनन्दको कहते हैं।

जब यह ज्ञान हो जाता है कि संसार संकल्पमात्र है तो ध्यानमें संसार भला कैसे ठहर सकता है। यदि आलस्य आवे तो समझो वहाँ अज्ञान है। आनन्दमय, आनन्दमय, शान्त आनन्द, अचल आनन्द, बोधस्वरूप आनन्द, ज्ञानस्वरूप आनन्द, आनन्द-ही-आनन्द—बस इस प्रकार आवृत्ति करते हुए सब समय ध्यानमें कार्य करे।

हरिः ॐ तत्सत्

भगवान्‌से प्रत्यक्ष मिलनेका उपाय—श्रद्धा-विश्वास

परमात्माकी प्राप्तिमें इतनी वस्तुएँ बाधा करती हैं—

पूर्वके संस्कार, बुरी आदत, नास्तिक (दुष्ट)-का संग, श्रद्धा-प्रेमकी कमी और विषयोंमें आसक्ति। इनका नाश होता है भजन, ध्यान, सेवा और सत्संगसे।

एक क्षणमें भगवान्‌का मिलन—

कुछ लोगोंसे पूछा तो कहते हैं शीघ्र ही कम-से-कम दो माहमें भगवान् मिल सकते हैं। होता यह है कि जो दो माहका अन्दाज बाँधते हैं उनको चार साल लग जाते हैं और जो एक दिनका अनुमान बाँधता है उसको दस दिन लग जाता है।

आपलोगोंने भगवान्‌के साक्षात् दर्शनकी बात पूछी सो यदि नित्यप्रति ऐसी भावना हो कि भगवान् कब मिलें, भगवान् कब मिलें तो निश्चय ही मिल जायँगे, ढील होवे ही नहीं।

हमलोग तो केवल बातें करते हैं, यदि हमको विश्वास ही हो जाय कि भगवान् हैं और वे एक क्षणमें मिलते हैं तो इस विश्वाससे शीघ्र मिलते हैं।

वास्तवमें भगवान्‌के प्रत्यक्ष मिलनेकी बात मैं क्या जानूँ, किन्तु आपलोगोंकी धारणा उत्तम है। जिसकी भगवान्‌का दर्शन करानेकी योग्यता हो, उसकी तो शक्ति ही अद्भुत है। अतएव महात्माओंने शास्त्रोंमें जो उपाय बतलाये हैं, उनके अनुसार कोशिश करनी चाहिये।

पहली बात तो यह समझो कि भगवान् हैं और ऐसा विश्वास होनेपर मिलनेकी बात होती है। कैसे हैं? क्या हैं? ऐसा प्रश्न ही नहीं उठने देना चाहिये। दर्शन देने पर वे कैसे हैं, वह आप ही मालूम हो जायगा, किन्तु पहले यह विश्वास होना चाहिये कि भगवान् हैं और वे दयासागर, करुणासागर हैं, ऐसा विश्वास होनेपर शीघ्र दर्शन होता है। वे दयालु हैं, इसीलिये सबको दर्शन देते हैं और बहुतोंको दिये हैं।

कई नास्तिक लोग तो भगवान्‌को मानते ही नहीं हैं, कई कहते हैं कि वे दर्शन नहीं देते। कोई कहता है दर्शन देते हैं पर हम जैसे भाग्यहीनोंको नहीं देते। भगवान्‌की दया होवे तो दर्शन मिल भी सकते हैं। इनमें जो कहते हैं कि भगवान् नहीं हैं वह अनर्गल है, उस नहीं कहनेवालेने क्या खोज लिया होगा? और जब नहीं खोजा तो क्यों कहा कि भगवान् नहीं हैं।

उन तीनोंमें उत्तम तो वह है जो कहता है कि दर्शन होते हैं। यह मानना कि भगवान् नहीं हैं, महामूर्खता है। भगवान्‌को हम नहीं देखते, इसलिये यह कह देना कि भगवान् नहीं हैं कितना भ्रमपूर्ण विचार है।

इसी प्रकार लोग पहले विमानकी बात नहीं मानते थे, किन्तु जब बनने लगे, उड़ने लगे, तब बड़ा आश्चर्य करने लगे। आज हम हिन्दुस्तानके बादशाहको देखना चाहें तो हमको पानीके जहाजमें इंगलैंड जानेमें दो माह लग जायँगे। परमात्मा तो सारी दुनियाका राजा है और सारी दुनियाका राजा ही नहीं, अखिल ब्रह्माण्डका नियन्ता है। विश्वास करनेपर भी यदि उनको देखनेमें देर लगे तो आश्चर्य ही क्या है?

[1409] भ० प्रे० प्रा० उ० 4 A

जैसे मेरे दादा मुझको नहीं दीखते तो क्या मैं यह कह सकता हूँ कि वे थे ही नहीं। उनका प्रमाण तो मैं बैठा हूँ, अन्यथा मेरे दादाके बिना मेरी उत्पत्ति होती ही कैसे? ऐसे ही ईश्वरकी सत्ता प्रमाणको मानना चाहिये। उनका प्रमाण यही ईश्वर है। यदि कोई कहे कि हम प्रमाण हैं तो हमारे दादा तो मर गये, अतः भगवान् भी मर गये होंगे? विचार करना चाहिये कि यदि परमात्मा संसारमें नहीं होते तो आज यह नष्ट-भ्रष्ट हो जाता। प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि इस ब्रह्माण्डमें नक्षत्र, तारे, सूर्य, चन्द्रमा ठीक समयपर चलते हैं। जिसकी सत्तासे ये चलते हैं, जिसके भयसे समुद्र मर्यादामें रहता है, भूमण्डल स्थित है, यह सब काम परमात्माकी प्रेरणासे ही चलता है। वह सबमें हैं, सब जगह उपस्थित हैं।

प्रश्न—क्या परमात्मा हमसे मिलकर बातचीत भी कर सकते हैं!

उत्तर—हाँ, उन कृपालु प्रभुसे हम बातचीत भी कर सकते हैं, वे साक्षात् दर्शन दे सकते हैं, यदि वह काम नहीं कर सकें तो उनकी सत्ता ही क्या रह जाय। वह साक्षात् दर्शन दे सकते हैं, क्योंकि वह सर्वशक्तिमान् हैं, वही भगवान् सब जगह व्याप्त रहते हुए भी भक्तकी इच्छानुसार दर्शन देते हैं। जिस प्रकार अग्नि सब जगह विराजमान है और उपाय करनेपर वह पूर्णरूपसे प्रकट होती है, ऐसे ही परमात्मा भी सब जगह रहते हैं और जहाँ प्रकट होते हैं, वहाँ सारी शक्तियोंसहित होते हैं।

मामूली छोटी-सी अग्निकी चिनगारी भी सारे ब्रह्माण्डको जला सकती है, परमेश्वर तो अग्निसे अधिक शक्तिशाली हैं। अग्नि जड़ है और परमात्मा सर्वशक्तिमान् हैं। जल भी आकाशमें परमाणुरूपसे

रहता है और साकार स्थूलरूपसे पृथ्वीपर आ सकता है। परमात्मा अपनी योगमायासे ऐसा करें तो आश्चर्य ही क्या है। इतनेपर भी जो कहता है कि प्रकट नहीं होते, वह मूर्ख है और वह ईश्वरके प्रभावको नहीं जानता, जो जानता है वह ऐसा कह ही नहीं सकता। विश्वास नहीं करनेके कारण ही हम आजतक परमात्मासे वंचित हैं।

विश्वास इसलिये करना चाहिये कि ध्रुव, प्रह्लाद, सूरदास, तुलसीदास आदिको ईश्वर मिले हैं, वे मिथ्यावादी नहीं थे। भगवान्से मिलना—बस इससे बढ़कर और कोई बात नहीं है, फिर तुम्हारे दूसरा काम रह ही क्या गया है? तुम क्या काम करते हो? क्या उसको कठिन मानते हो, किन्तु देखो, भगवान् स्वतः कहते हैं—साधन करना बड़ा सुगम और अविनाशी है—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

(गीता ९। २)

यह विज्ञानसहित ज्ञान सब विद्याओंका राजा, सब गोपनीयोंका राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष फलवाला, धर्मयुक्त, साधन करनेमें बड़ा सुगम और अविनाशी है।

भगवान् और क्या कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें

युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

ऐसे निरन्तर चिन्तनवालेको विलम्ब भी नहीं होगा, क्योंकि भगवान् कहते हैं—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२।७)

हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।

यदि विघ्न, बाधा आती है तो भगवान् उनका नाश कर देते हैं, क्योंकि भगवान् कहते ही हैं—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

भगवान् नित्य-निरन्तर चिन्तनसे सुगमतासे मिलते हैं। एक बात खयाल रखो कि नित्य-निरन्तर चिन्तनको कठिन मत मानो। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि स्त्री, पुत्र, धन आदिमें समय व्यतीत करते हुए निरन्तर चिन्तन नहीं होता और यदि मुझको सबसे श्रेष्ठ मानो तो मैं तुम्हारे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकता। भगवान् और भी कहते हैं कि यदि तुम संसारको लात मारकर मुझे भजते तो मैं उसी समय तुमको दर्शन दे देता, देखो यह खयाल रखनेकी बात है—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

यह समझनेपर एक क्षण भी मेरा चिन्तन नहीं छोड़ सकता। वह मूर्ख कौन है जो जानकर, बूझकर अपना नुकसान करे, यहाँतक कि पशु-पक्षी और छोटा बालक कोई भी नहीं कर सकता।

किसी अनजान बालकके पास बीस तरहकी वस्तुएँ खेलनेके लिये रख दो तो वह जो वस्तु सबसे अच्छी लगेगी, वही उठायेगा। यदि कोई हमारे लिये तीन घंटेतक राज्यका खजाना खोलकर कहे कि तुमको जो चाहिये सो लेकर जा सकते हो। तो हम उसमेंसे जो मूल्यवान् वस्तु है वही उठायेंगे, जैसे हीरा, रत्न आदि, हम कंकड़-पत्थर नहीं उठायेंगे।

जबतक विषयोंमें मन जाता है समझो अभीतक इनको बड़ा मान रखा है, यदि ईश्वरको बड़ा मानते तो आज उसको अवश्य भजते। जिस प्रकार छोटे बच्चेका दूध छुड़ानेके लिये माता स्तनपर कड़वी चीज लगा लेती है, मुँहमें कड़वापन लगनेके कारण बच्चा झुँझला जाता है तो माता बार-बार वही स्तन बच्चेको देती है, जिससे वह माताका पीछा छोड़ दे, वह दूध नहीं पीता और रोता है, फिर माता अधिक प्रेमवश उस औषधिको धोकर दूध पिलाती है। इसी प्रकार इस संसारको विषतुल्य समझो और तुरन्त छोड़ दो, क्योंकि भगवान् अपना मिलना कठिन नहीं बतलाते, बल्कि कहते हैं—'**सुसुखं कर्तुमव्ययम्**'। भगवान् कहते हैं मुझमें मन

लगा, विषयोंमें नहीं, मेरा भक्त बन, स्त्री, पुत्र, संसारी भोगोंका भक्त मत हो, '**मद्याजी**' मेरी पूजा करनेवाला हो, गुलामी मत कर, मुझे ही नमस्कार कर म्लेच्छोंको नहीं।

फिर गीता अ० १०। ९ में कहते हैं—'**मच्चित्ता मद्गतप्राणाः**' और कहते हैं जो मुझे अनन्य चित्तसे, प्रेमसे भजता है उसको मैं ऐसी बुद्धि देता हूँ कि वह एक क्षणमें मुझसे मिल जाता है। आज आप निश्चय करें कि भगवान् मिलेंगे, झट विश्वास करो तो अवश्य ही आज ही मिलेंगे।

बालकके लिये माताका दूध अमृत है, किन्तु उस परमात्माकी एक छटा देखकर ही भक्त तो आनन्दमय हो जाता है और जगत् ईश्वरमय हो जाता है, फिर तो जहाँ-कहीं जरा-सी भी आहट हुई, वह देखने लगता है कि कहीं भगवान् तो नहीं आ गये। भगवान् प्रतीक्षा करनेवालेके लिये विलम्ब नहीं करते, शीघ्र ही आते हैं। प्रभु बड़े दयालु हैं, प्रेमके तत्त्वको जाननेवाले हैं। प्रभुमें हमारी श्रद्धा और प्रेम विशेष होनेसे वे व्याकुल हो उठते हैं, यदि थोड़ी-सी भी श्रद्धा और प्रेम भगवान्में हो जाय तो वे किसीके रोके नहीं रुकते, हमलोगोंका श्रद्धा, प्रेम नहीं है, इसीलिये हम प्रभुको प्राप्त नहीं कर पाते।

हमको सत्संग करके श्रद्धा, प्रेमकी वृद्धि करनी चाहिये। निरन्तर चिन्तन करनेसे प्रभु रुक ही नहीं सकते। भक्तिवालोंको गीता अ० १०। ९ का श्लोक हमेशा याद रखना चाहिये।

'**मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु**' १८। ६४ में तो चार ही बात बतलायी है किन्तु १०। ९में तो एक ही बारमें चार बात बतायी और '**तुष्यन्ति रमन्ति**' तो अलग ही है। जिस प्रकार मछली जलके बिना मर जाती है तो मछलीका जलके लिये प्रेम

है, परन्तु जल मछलीके लिये नहीं तड़पता, हाँ, प्रभु यदि जलके स्थानपर होते तो कूद पड़ते और प्यारी मछलीकी जान बचा लेते। बस '**मच्चित्ता मद्गतप्राणाः**' बन जाओ, प्रभु बिना विलम्ब एक क्षणमें आते हैं। प्रभु कहते हैं मेरे वियोगको जो सहन नहीं कर सकता, उसको मैं प्राण दान देता हूँ।

जबतक बच्चा माताका वियोग सहन करता है, तबतक ही माता उससे अलग रहती है, किन्तु जब वह तड़पने लगता है, तब तो माता हाथका सब काम छोड़कर उसको उठा लेती है। इसी प्रकार आज हम प्रभुका वियोग सहन कर रहे हैं, इसीलिये हमको विलम्ब हो रहा है, यदि हम भगवान्‌का वियोग सहन नहीं करें तो भगवान्‌को हमारा वियोग सहन नहीं होगा।

जिस समय रामचन्द्रजी वनगमनको तैयार हुए, तब सीताको भी मालूम हुआ तो वे बोलीं मुझे दासी जान साथ रखिये। भगवान्‌ने वनके कष्ट बतलाये, बहुत समझाया, पर सीताका बहुत आग्रह देखकर रामजी समझ गये कि सीता मेरे वियोगको सह नहीं सकती, इसलिये साथ लेना ही पड़ा।

भगवान् आश्चर्य कर रहे हैं कि सीता रावणके यहाँ है, पर इस वियोगमें उसके प्राण नहीं निकलते? हनुमान्‌जी खबर लेकर आये और कहा कि उनके हृदय-कपाट तो नाम-स्मरणमें बन्द हो गये हैं, इसलिये वे प्राण नहीं दे सकतीं। अहा! भगवान् वृक्षोंको पूछते हैं, हे वृक्ष! क्या तुमने मेरी सीताको देखा है, इस प्रकार सीताके वियोगमें इधर राम हैं और उधर रामके वियोगमें सीता हैं।

भगवान् भक्तोंको मिलनेकी उत्कट इच्छा बढ़ानेके लिये ही विरह-यन्त्रणा देते हैं, भक्तका हित समझकर देते हैं। जो विरह,

व्याकुलताको सहन कर लेता है, उसीको विरह देते हैं। जो विरह, व्याकुलता सह नहीं सकता उसको विरह नहीं देते, उसको तो पासमें ही रखते हैं।

रामचन्द्रजी कुछ काम होता तो लक्ष्मण, शत्रुघ्नको भेज देते थे, भरतजीको नहीं भेजते थे, क्योंकि भरतजी चौदह वर्षमें विरह, व्याकुलताका तत्त्व समझ गये थे, इसलिये वे एक क्षणका भी विरह सहन नहीं कर सकते थे। इसीलिये वे सदा प्रभुके साथ ही रहते थे। बात यह है कि जितनी व्याकुलता होगी, उतना ही आनन्द होगा, जैसे अधिक भूखमें अन्न अमृतके समान लगता है।

गोपियोंकी जो भी बात होती थी, बड़े प्रेमकी होती थी और कृष्णकी ही होती थी। एक दिन काले भौंरेको देखकर कृष्णकी याद आ जाती है, क्या करूँ सखी! कृष्ण मिलता नहीं, कैसे करूँ। भगवान् छिपकर देख रहे हैं, देखा विरह-व्याकुलतामें गोपी अधिक लीन हो गयी, बेहोश हो गयी, अब विलम्ब करनेसे प्राण चले जायेंगे, तब तो नटनागर मुरलीवाले झट प्रकट हो गये और प्रेमसे दर्शन दिये।

'मच्चित्ता मद्गतप्राणाः' यह रमण अनुपमेय है, इसका आनन्द त्रिलोकीके आनन्दसे भी अधिक है, ऐसा रमण है। वह भगवान्‌के ध्यानमें मस्त रहता है। कहता है हमारे प्राणोंको हटा दो, किन्तु ईश्वरसे हमको मत हटाओ। जो आनन्द प्रभुके रमणमें है, वैसा तो देवताओंको स्वर्गमें भी नहीं मिलता, स्वर्गका आनन्द तो क्षणिक है।

उस प्रभुके आनन्द-रमणके साथ किसीका भी उदाहरण नहीं लगता, जल-मछलीका भी नहीं लगता। बस वह तो ऐसी वस्तु प्राप्त कर लेता है जिसका भगवान् भी वर्णन नहीं कर सके।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

ईश्वरमें रमण करनेवालेके लिये संसारका ऐश्वर्य धूलके समान है। उसके लिये देवतालोग विमान लेकर आते हैं तो वह उसे भी ठुकरा देता है। वह तो बस, भगवान्के साथ रमण ही चाहता है, उसीमें परम प्रसन्न रहता है।

हमारी यदि किसी पुलिसकप्तानसे या खास बादशाहसे मित्रता हो जाय तो हम अपनेको सबसे बड़ा समझते हैं, पर भगवान्से अपनापन कर ले तो कहना ही क्या है। फिर तो कृतकृत्य हो गये, भगवान् हमारे और हम भगवान्के हैं ही।

वैराग्यकी महिमा

गंगाजी, पर्वत, सुन्दर पवित्र तपोभूमि, पवित्र गंगातट, अरण्य, गंगाकी रेणुका ये सभी परम पवित्र हैं। यहाँ ऋषि-मुनियोंने प्रभुको प्राप्त किया है। यहाँ वैराग्यकी लहरें उठ रही हैं।

यदि योग्य वक्ता पुरुष होवे तो एक बारमें ही फल हो सकता है, सच्चा वैराग्य और उपरामता हो सकती है। बार-बार कहना नहीं पड़ता।

जबतक पूर्ण लाभ नहीं हो, तबतक यही निश्चित करे कि आज ही प्रभुकी प्राप्ति होगी, जैसे किसीके प्रेमीको पानेका उत्साह होवे। प्रभुको अवश्य बाध्य होकर आना पड़ेगा, इसमें कोई संदेह नहीं। विश्वास चाहे जिसका हो, वह वस्तु अवश्य प्राप्त होगी।

यह जो दृश्य है सब वैराग्यका ही उपदेश है, यहाँ तो स्वाभाविक ही उपरामता होती है। देखो चारों ओर गंगाजी हैं, पहाड़ हैं, कितने सुन्दर हैं, पवित्र तपोभूमि है, पवित्र गंगातट है। यह कानन कितना सुन्दर है, शान्त है, यही अरण्य है, इसीमें ऋषि-मुनियोंने वैराग्यसे प्रभुको प्राप्त किया है।

देखो वैराग्यकी लहरें उठ रही हैं। इस पवित्र स्थानको घर जाकर भी याद करे तो उपरामता-वैराग्य होता है। हम स्वत: बैठे हैं, गंगाजीकी रेणुका परम पवित्र है, वैराग्य उत्पन्न करनेवाली है।

वैराग्यवान् पुरुषका दर्शन भी उत्तम है और अनुकूल है। वैराग्य-उपरामता पूर्ण होनेपर आनन्द हो जाता है। जब वैराग्यका वेग होता है, उस जोशमें त्रिलोकीका आनन्द तुच्छ प्रतीत होता है।

वैराग्यवान् पुरुष जिस-जिस मार्गसे चलता है, वह मार्ग वैराग्यसे पूर्ण हो जाता है, उसके दर्शनसे, भाषणसे, चलनेसे नेत्रोंमें केवल वैराग्य ही छाया रहता है।

संसार क्षणभङ्गुर है। देखो पल-पलमें क्षीण होता है। इसको

प्रवचन माह अप्रैल १९३७, टीबड़ी, स्वर्गाश्रम।

ईश्वरकी माया समझो। बेपरवाह बनो, शरीरके जीने-मरनेसे, संसार-त्यागसे प्रयोजन न रखो। कारणसे ही कार्य होता है, किसीकी इच्छा नहीं है। कामिनी, कञ्चन, आराम, ऐश, भोग, स्वाद सब कलंकरूप हैं।

वैराग्य-अवस्थामें ध्यान स्वतः लग जाता है। उस समय यदि कोई आपकी पूजा करे तो वह पूजा आपको कलंक-सी मालूम पड़ेगी। जो फूल-माला आपको प्रिय थी, वैराग्यमें उसीसे घृणा होने लगती है। वैराग्यवान्‌का सत्कार करनेवालेका भाव यह रहता है कि मैं इनका सत्कार करता हूँ। वह इत्र लगाता है, किन्तु इत्रका स्वभाव सुगन्ध होनेसे भी उसको विपरीत प्रतीत होता है। वह वैराग्यवान् उससे पेशाबके समान घृणा करता है। यानी इत्रकी सुगन्धमें भी उसको दुर्गन्धका भास होता है। सुख-दुःख, शीत-उष्णकी समता वैराग्यवान्‌को ही होती है, साधन बहुत तीव्र होता है, विघ्न भी नहीं आते, यदि आते हैं तो असर नहीं करते। कर्मानुसार कर्म आते हैं भोगनेके लिये, किन्तु उनका असर नहीं पड़ता। कुछ भी हो, गृहस्थी हो या व्यापारी हो, पुत्रके जन्म-मृत्युमें भी वह सम रहता है। वह हर्ष-शोकसे रहित है।

अन्तःकरणरूपी दर्पणपर आसक्तिरूपी मसाला लगा हुआ है। इस दर्पणपरसे वैराग्यरूपी जलसे आसक्तिरूपी मसाला हट जाता है तो काँच पारदर्शक हो जाता है। आसक्तिरूपी मसालेको धोनेसे अन्तःकरणरूपी कांच पारदर्शक हो जाता है, तब उसमें मायाका प्रतिबिम्ब नहीं पड़ता।

इसके लिये अभ्यास करना चाहिये। जैसे मैले दर्पणको साफ करनेसे वह साफ होता है, यानी निष्कामभावसे भजन करना ही मल दूर करना है। वैराग्यमें यह नहीं समझे कि घर छोड़ना है, किन्तु आसक्तिरहित रहना चाहिये।
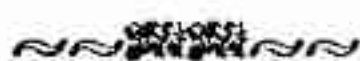
गृहस्थमें निष्कामकर्म

जो व्यवहारमें स्वार्थ करता है। नफेका उद्देश्य नहीं होता, किन्तु नफा लेकर पुण्यमें लगाना चाहता है, यह निष्कामकर्म नहीं है।

शरीर-निर्वाह रुपयोंके ब्याजसे, घरके भाड़ेसे, साधारण गरीबोंके लिये नौकरीसे हो सकता है, यदि नौकरीमें ५०/- मासिक मिलता हो तो वहाँ कम लेना चाहिये। जितनेमें शरीर निर्वाह हो सके, लेना योग्य हो, उतना ही लेना निष्कामकर्म है, त्याग ही निष्काम है।

रुपयोंके लिये लोभ किया तो रुपया मिलेगा, भगवान्‌के लिये लोभ किया तो भगवान् मिलेंगे। लोकोपकारके लिये जो सेवा करता है, काम करता है, वह निष्काम है।

यदि स्वार्थत्याग हो जाय तो सब व्यापार निष्काम हो जाय। उसमें भी एक तो ऐसा कि उससे हमको रुपया मिले और दूसरा यह कि भगवान्‌की आज्ञा है, हमारा कर्तव्य पालन है। प्रसाद यह है कि १००/- मिलते हों ५०/- ही लेवें और स्वार्थ तो यह है कि ५०/- की जरूरत हो और १००/- लेवें। ऐसा समझे कि यह धन संसारका है और कर्मचारी जो दूकानपर हैं, उन्हींमें मैं भी एक हूँ। सुख-दु:खका हेतु ममता ही है।

दूकानमें चाहे लाभ हो या हानि, इसमें मेरा कुछ हानि-लाभ नहीं है, यह निष्कामकर्म है। लाभ-हानिमें हर्ष-शोक नहीं होना ही निष्कामकर्म है। मैं जो करता हूँ, भगवान्‌की आज्ञासे ही

करता हूँ, रुपयोंके लिये नहीं, यह निष्कामकर्म है। भगवान्‌का वचन है—

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

(गीता २। ४०)

इस कर्मयोगमें आरम्भका अर्थात् बीजका नाश नहीं है और उलटा फलरूप दोष भी नहीं है; बल्कि इस कर्मयोगरूप धर्मका थोड़ा-सा भी साधन जन्म-मृत्युरूप महान् भयसे रक्षा कर देता है।

भोजन भी स्वादकी दृष्टिसे करे तो सकाम है, शरीर-निर्वाहके हेतु ही भोजन करना निष्कामकर्म है।

प्रश्न—काम-क्रोधमें बलवान् कौन है?

उत्तर—काम बलवान् है, इससे ही क्रोध होता है। काम, क्रोध, लोभ, मोहमें भी पहला नाम कामका ही आया है।

राजा साहब—आरामतलबका लौकिक या पारलौकिक कोई भी कार्य फलीभूत नहीं होता। गद्दीका आराम और जमीनपर बैठनेका दुःख इसमें किस प्रकार समभाव हो।

उत्तर—सूक्ष्म विचारसे मालूम पड़ता है कि वह राग नहीं है। जैसे गद्दी और जमीन दोनों सामने होवे, तब वह गद्दीपर बैठे तो समझो गद्दीसे राग है, कामना है। यदि कामना नहीं है तो उपरामता है। उपरामतामें शरीरका भाव नहीं रहा करता। दृढ़ वैराग्यके बाद जो ज्ञान होता है उसमें पूर्ण आनन्द होता है, वैराग्यवान्‌को जो वस्तु कम आरामकी दिखेगी, वही ग्रहण करेगा।

दो वस्तु सामने रखी है तो वैराग्यवान् आरामकी वस्तु स्वतः ग्रहण नहीं करेगा, किन्तु उससे घृणा भी नहीं करेगा।

आसक्तिका भेद यह कि सब बात भावसे रखे तो

बाहरकी झलक आ जाती है। बाहरी इन्द्रियोंका संयम ढोंगसे भी होता है।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते॥

(गीता ३।६)

जो मूढ़बुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियोंको हठपूर्वक ऊपरसे रोककर मनसे उन इन्द्रियोंके विषयोंका चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है।

नीयत लोगोंको ठगनेकी होवे और ढोंगसे साधन करे, वह मिथ्याचारी, दम्भी है, साधनावस्थामें भी दम्भ हो जाया करता है। जितनी बात दिखानेकी है वह पाखण्ड है। जो जान-बूझकर दम्भ नहीं करता और उसमें स्वाभाविक त्याग है, वह उत्तम है। साधककी इच्छा प्रशंसा सुननेकी नहीं होनी चाहिये। सुख-दुःख, निन्दा-स्तुतिमें साधकको सम रहना चाहिये।

निन्दा तीन प्रकारकी है—

कृत—स्वयं दूसरेकी निन्दा करे।

कारित—दूसरेको निन्दा करनेकी प्रेरणा करता है।

अनुमोदन—किसीको दूसरेकी निन्दा करते हुए देखकर ही प्रसन्न हो रहा है।

इसी प्रकार प्रशंसा भी तीन प्रकारकी है—

कृत—स्वतः प्रशंसा नहीं करता, अपनेको दोषी मानता है पर मेरी प्रशंसा हो, ऐसी इच्छा रखता है।

कारित—अपनी तारीफ करवाता है, वह पाप है।

अनुमोदन—अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना, यह न्यून है।

तीर्थस्थानमें जितना पाप करेगा पापकी उतनी ही वृद्धि होगी

और जितना पुण्य करेगा पुण्यकी उतनी ही वृद्धि होगी यानी तीर्थमें सबकी वृद्धि होती है।

प्रश्न—अपने साधनका हाल किसीको कहना चाहिये या नहीं?

उत्तर—(१) वाणीद्वारा सुनाया जा रहा है, उद्देश्य यह है कि सुनकर वह भी साधनमें लग जाय तो यह भाव उत्तम है।

(२) उद्देश्य-भाव यह होवे कि मेरा बड़प्पन जाहिर हो, यह मध्यम है।

(३) पुण्य बतानेके लिये यदि दान देना जाहिर करे तो वह पाप है और रुपया देना जाहिर करके जिसने सुना वह भी उसी भाँति सहायता देवे यह भाव हो तो यह पुण्य है। सकामकर्म राजसी है। निष्कामकर्म सात्त्विक है।

यदि कोई पुत्रादिके लिये साधन, तपस्या करता है तो वह मध्यम है।

तीर्थ करना, पूजा-पाठ करना भगवान्‌के लिये किया तो पुण्य है, इसलिये निष्कामकर्म ही करना चाहिये।
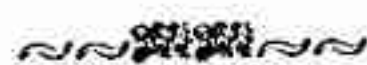
मन लगाकर जपकी विशेषता

संसार समुद्र है। समुद्रमें रत्न भी हैं, हीरा, पत्थर सब हैं। समुद्रमें डुबकी लगानेवाला पुरुष ही रत्न निकालता है।

संसार-समुद्रमें मूल्यवान् वस्तु भक्तिरत्न है, हीरा है। इसको ज्ञानचक्षुसे निकाल लो। भजन, कीर्तन, स्मरण आदि भी मूल्यवान् वस्तु हैं।

हमारा मनुष्य-जीवन अमूल्य है, इसको ऊँचे-से-ऊँचे कार्यमें लगाना चाहिये, यही सर्वोत्तम है। रोजका नित्यकर्म जो हमलोग करते हैं उसमें सुधार करना चाहिये। एक भाई भगवान्के नामकी सौ माला जपता है, किन्तु मन कहीं और है जिसका पता नहीं और एक भाई एक ही माला जप करता है, किन्तु मनसे करता है तो वह एक ही मालाका जप सौके बराबर हो जायगा।

मनुष्य भजनसे परम गति प्राप्त करता है। जो सौ माला फेरता है उसमें अन्ठानवे तो बिना मनकी हुई और दो मनसे तो दो ही माला ठीक फेरी है। विषयोंमें तो मन लगा है और माला हाथमें है, वह माला ठीक नहीं। भगवान्में मन लगा रहता है वह ठीक है।

प्रधानता तो मनकी है क्रियाकी नहीं, मनसे कार्य करना चाहिये। यमराजने पूछा कि तुमने कितनी माला फेरी तो झट बोला सौ, यह यमराजको भी धोखा देना है।

जहाँ-जहाँ मन जाय, वहाँ-वहाँ परमात्मामें लगानेसे लाभ होता है। चौबीस घंटामें एक घंटा भी भजन किया और वह भी

यदि बिना मनका हुआ तो क्या लाभ? वह एक घंटा तो भगवान्‌के निमित्त होना चाहिये। पहले हमको नित्यकर्मका सुधार करना चाहिये। बाकीका समय यदि भगवान्‌की स्मृति मनसे करो तो उत्तम है, मनकी चौकसी करो, बहुत लाभ होगा। मन अच्छा काम करे तो उत्साह दो कि तुमने बहुत अच्छा किया, बुरा करे तो फटकार दो कि देख तेरे इसमें क्या लाभ है।

प्रश्न—मनकी निगरानी रहनेपर भी धोखा देता है।

उत्तर—नियमित रहना चाहिये। यह करना चाहिये कि जब भगवत्-स्मृति हो तो झट भगवान्‌को पकड़ लो। भगवत्-स्मृति छूट जाय तो मनको धिक्कार दो तथा समझाओ कि तेरी इस समय मृत्यु हो जाती तो क्या गति होती।

रातको यदि अचानक नींदसे उठो तो झट भगवान्‌को याद कर लो। स्वप्नमें भी बुरा स्वप्न देखा तो मनको समझाओ, धिकार दो कि यह क्यों किया। सोते समय भगवान्‌का स्मरण करता हुआ सोवे और सोते समय यदि गीता-पाठ करता हुआ सोवे तो स्वप्नमें भी वही होता रहेगा।

अपना दूसरा समय ऐसा सुधारना चाहिये कि प्रभुका स्मरण सदैव हो। दिनका समय सुधारना कठिन नहीं है। रातका समय सुधारना कठिन होता है। दिनमें कुछ वश रहता है, रातको नहीं रहता।

मैं पहले सोता था तो 'विष्णुसहस्रनामका' पाठ करता हुआ सोता था, तब जब नींद खुली तो जहाँसे छूटा था बस वहींसे शुरू कर देता था, यदि भूल जाता तो फिर शुरू कर देता था। ऐसा करते-करते सबेरे उठते समय बड़ा अच्छा प्रतीत होता था। विष्णुसहस्रनाम हो या गीता, दोनों पाठ एक ही हैं, इससे

दुःस्वप्रका नाश होता है।

दिन हो या रात, जब मन बुरी जगह जाय, उसको धिक्कार दो, कहो, रे मन उस समय यदि मृत्यु हो जाती तो तेरा क्या हाल होता? जिस समय देखो कि मन भगवान्‌में नहीं है तो एकदम भगवान्‌में लगाओ। परमात्माके सिवाय दूसरा चिन्तन करना महान् जोखिम है।

प्रश्न—निरन्तर चिन्तन करते-करते भगवान् प्राप्त नहीं हुए तो?

उत्तर—भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८। १४)

हे अर्जुन! जो पुरुष मुझमें अनन्यचित्त होकर सदा ही निरन्तर मुझ पुरुषोत्तमको स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें युक्त हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ, अर्थात् उसे सहज ही प्राप्त हो जाता हूँ।

यह श्लोक झूठा नहीं हो सकता, भगवान् धोखा नहीं दे सकते, हम चाहे उनको धोखा दिया करें। भगवान् कहते हैं—

तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम्॥

(गीता ८। ७)

हे अर्जुन! तू सब समयमें निरन्तर मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर। इस प्रकार मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिसे युक्त होकर तू निःसन्देह मुझको ही प्राप्त होगा।

विराट् हिरण्यगर्भ है, यह सब विश्व भी प्रभुरूप है। तात्पर्य

यह कि जो कुछ है सब ईश्वर ही है।

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८।५)

जो पुरुष अन्तकालमें भी मुझको ही स्मरण करता हुआ शरीरको त्याग कर जाता है, वह मेरे साक्षात् स्वरूपको प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

सर्वत्र ईश्वरबुद्धिवाला चाहे जब मरे, उसको सदैव ईश्वर मिलता है।

भगवान् दावेसे कहते हैं कि मेरा स्मरण करनेवाला मुझे ही प्राप्त होता है। अधिक बीमारीसे यदि सन्निपात भी हो जायगा तो मरनेके पूर्व यह भी शान्त हो जायगा। सन्निपातके पूर्वमें भी यदि उसको भगवान्‌का स्मरण है तो सन्निपातके बाद भी स्मरण रहेगा।

सदा जिस भावको भावेगा अन्तकालमें वही गति होगी, भगवान् अन्तकालका उधार नहीं रखते। निरन्तर चिन्तन करनेसे, प्रेमपूर्वक चिन्तन करनेसे वह अन्तकालमें तो क्या पूर्वमें ही प्रभुको मिल जाता है।

मनुष्यका यही लक्ष्य ध्येय रहना चाहिये कि सबका कल्याण हो जाय।

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

(गीता १२।४)

जो पुरुष इन्द्रियोंके समुदायको भली प्रकार वशमें करके मन-बुद्धिसे परे सर्वव्यापी, अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहनेवाले, नित्य, अचल, निराकार, अविनाशी सच्चिदानन्दघन

ब्रह्मको निरन्तर एकीभावसे ध्यान करते हुए भजते हैं, वे सम्पूर्ण भूतोंके हितमें रत और सबमें समान भाववाले योगी मुझको ही प्राप्त होते हैं।

अपने हितके लिये, स्वार्थके लिये किसीको कुछ देना हित नहीं है, नि:स्वार्थ देना ही हित है। गायत्री-मन्त्र भी यही शिक्षा देता है सबके मनमें प्रेरणा करो। वेदका शान्ति-पाठ यही कहता है कि सबका कल्याण हो। तर्पणका भी यही उद्देश्य होता है कि सबको मिले। बलिवैश्वदेवका भी यही उद्देश्य होता है कि सबको मिले। सबका हित चाहे अपना नहीं।

केवल अपना हित नहीं होवे तो हानि नहीं, सबका भला पहले होना चाहिये।

अपना जो होगा सो देखा जायगा, परवाह नहीं है। असंख्य जीवोंका हित होवेगा तो हमारा रह थोड़े ही जायेगा।

यदि हमारे भाई, जीव-जन्तुओंका हित होवे हमारा नहीं होवे तो चिन्ता मत करो। तन, मन, धन सब लोकसेवा-कल्याणमें लगा दे, यही ध्येय बना ले, अपनी चिन्ता न रखे। ऐसे पुरुषके दर्शन, स्पर्श, भाषणसे लोगोंका उद्धार हो सकता है। जो संसारमें अपना कुछ नहीं समझता, सबका समझता है, वही उत्तम है।

(१) गिरा हुआ वह है जिसका जीवन ही आलस्य-प्रमादमें बीतता रहता है।

(२) उससे कुछ ठीक अच्छा जीवन उसका है जो कुछ समय आलस्य-भोगमें बितावे।

(३) उससे कुछ ठीक अच्छा जीवन उसका है जो न पाप करे न पुण्य, जैसे पशु-पक्षी।

(४) उससे कुछ ठीक अच्छा जीवन उसका है जो पाप

करे ही नहीं, उत्तम काम्य कर्म, सकाम भावसे दोनों लोकके लिये करता है।

(५) उससे कुछ ठीक वह है जिसने मन-इन्द्रियोंको वशमें करके योग-स्थिति प्राप्त की है।

(६) निष्कामभावसे दुनियाकी सेवा करे।

(७) सबको प्रभु समझकर सेवा करे।

(८) जो भक्तिद्वारा प्रभुको प्राप्त हो चुका है।

(९) जो अपने प्रयत्नसे दूसरोंको भी परमात्मा प्राप्त करा देवे।

(१०) जिसके दर्शन, स्पर्श, भाषणमात्रसे ही बिना प्रयत्नके लोक पवित्र होते हैं।

(११) उनका स्मरण करनेसे ही कल्याण होता है।

(१२) जिसका नाम उच्चारणसे कल्याण हो जाय, ऐसे केवल भगवान् हैं।

जबहिं नाम हिरदे धर्‌यो भयो पापको नास।
जैसे चिनगी अग्निकी परी पुराने घास॥

बस यही श्रेष्ठताकी अन्तिम सीमा है।

प्रश्न—ध्यान करते समय ध्यानमें हर एक रूपका दर्शन होता है सो क्या करना चाहिये?

उत्तर—राम, कृष्ण और विष्णु आदि सब एक ही हैं, जैसे थियेटर होता है उसके पात्र स्वांग लेकर आते हैं, ऐसे ही भगवान् भी संसार-नाटकमें स्वांग ले-लेकर आते हैं।

भगवान्‌की जो मूर्ति ठीक लगे, अच्छी लगे, प्रिय हो उसका ध्यान ठीक है। भगवान् मनमें यदि दूसरे रूपमें दर्शन दें तो उन्हें भलीभाँति पधरावो, क्योंकि जिसका हम ध्यान करते हैं उसके विपरीत दूसरा आवे तो उनकी कृपा है।

मैं तो तीनोंको एक मानता हूँ, ऐसा समझता हूँ कि प्रभुका युगानुसार रूप है, जब भगवान्‌का ही स्वरूप है तो क्या करना चाहिये? तब सोचा कि तीन वस्तु हैं। १. आचरण चरित्र २. उपदेश ३. ध्यान। पहला आचरण तो रामचन्द्रजीके जीवनके अनुसार बनानेकी चेष्टा करनी चाहिये। उपदेशमें कृष्णकी गीता अति उत्तम है। तीसरा—ध्यान विष्णुका चुना, बाकी सभी पवित्र और उत्तम हैं। श्रीरामजी, श्रीकृष्णजीकी मनुष्याकृति थी और भगवान् विष्णुजीकी देव आकृति है, यह सात्त्विक है।

प्रश्न—माता, पिता, गुरुमें गुरु कौन है?

उत्तर—जो एक अक्षरका भी उपदेश दे वह भी गुरु ही है। सबकी सेवा करना उत्तम है। उत्तम वह है जिसके उपदेशसे हमारा कल्याण हो। जो परमात्माकी प्राप्ति करा दे, वही उत्तम गुरु है। शास्त्रमें कहा है कि गुरु ब्राह्मण ही बनता है। गौण यह है कि राजासे भी शिक्षा ली है और ऐसे भी हैं जो अपनेको गुरु नहीं मानते।

राजा जनकके यहाँ ऋषि-मुनि उपदेशके लिये आया करते थे और उनको गुरुरूपसे मानते थे, पर राजा जनक स्वयंको गुरु नहीं मानते थे। राजा अश्वपतिका शासन रामचन्द्रजीसे भी उत्तम था या यों कहो कि मिलता-जुलता था। कुछ ऋषि ज्ञानके लिये गये। ऋषि पाठशालावाले थे। राजाने सोचा कि ये शायद धनके लिये आये हैं। धन देना चाहा तो उन्होंने इन्कार कर दिया। तब राजाने सोचा कि ऋषियोंने मेरा धन खराब समझकर ग्रहण नहीं किया। राजाने कहा कि मेरा धन पवित्र है। मेरे राज्यमें कोई चोर नहीं है तथा न अदाता, न मद्यप, न कोई द्विज अग्निहोत्र नहीं करनेवाला है, न अविद्वान् और न परस्त्रीगामी ही है, फिर कुलटा स्त्री तो आये ही कहाँसे। ऋषियोंने कहा कि हम इस धनके लिये नहीं

आये हैं। तब राजाने उन्हें तत्त्वज्ञानका उपदेश दिया। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह सनातन प्रणाली चली आयी है। यदि सबको पूजनेकी हमारी इच्छा रहे तो और भी उत्तम है। वृक्ष, पशु, पक्षी आदि भी हमारे गुरु ही हैं, इनसे भी शिक्षा लेनी चाहिये और सर्वत्र भगवत्-दृष्टि रखना तो अति उत्तम है।

प्रश्न—तैंतीस कोटि देवता क्या हैं?

उत्तर—तैंतीस कोटि संख्यामें भी थे। कोटि कहते हैं झुण्डको, दलको, यानी तैंतीस दल हैं। उनका समुदाय छान्दोग्य-उपनिषद्में पृथक्-पृथक् है।

८ वसु—जिसमें प्रजा वास करे, लोकपाल आदि, इनमें प्रधान अग्नि हैं।

११ रुद्र—जो सृष्टिका संहार करे, उनमें प्रधान शंकर हैं।

१२ आदित्य—जो लोकोंका पालन करे, उनमें प्रधान विष्णु हैं।

१ इन्द्र

१ प्रजापति ब्रह्मा

३३ इस प्रकार तैंतीस देवता प्रधान हैं, ये सब अधिष्ठाता हैं। इन तैंतीस कोटि देवताओंमें तीन प्रधान हैं—प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, आदित्योंमें विष्णु, रुद्रोंमें महेश।
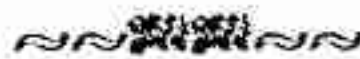
निष्कामसेवा

निष्कामकर्मसे अभिप्राय उस कर्मसे है जिसमें स्वार्थत्याग हो। हमसे जो भी क्रिया होती है, पाप होते हैं, बनते हैं, स्वार्थके कारण बनते हैं। हमारे द्वारा किसी जीवको सताया जाय, ऐसा काम नहीं होना चाहिये। अपने द्वारा दूसरोंको दुःख न पहुँचावें।

हम कोई भी कर्म करें, जप, तप, दान उसमें हमारी कामना नहीं होनी चाहिये। यहाँतक कि उसका उद्देश्य भी कामना नहीं हो। स्त्री, पुत्र, धन किसी भी प्रकारकी कामना नहीं होनी चाहिये।

देवताओंसे कोई कामना न करे। नाशवान् पदार्थके लिये इच्छा न करे, संतोष रखना चाहिये।

समझो कि हमारी स्त्री, नौकर तो सेवाके लिये हैं ही, किन्तु दूसरे किसीसे लौकिक मदद नहीं लेनी चाहिये। यथाशक्ति दूसरेका किसी प्रकार ऋणी नहीं बनना चाहिये। लौकिक सेवाके लिये दूसरेका आभारी नहीं बनना चाहिये।

हमारी जो प्रत्येक क्रिया हो, उसमें जो फल हो, उसकी इच्छा नहीं करनी चाहिये, किसीसे प्रत्युपकारकी भावना नहीं रखनी चाहिये। कोई भी लौकिक स्वार्थ नहीं चाहना चाहिये। ईश्वरकी आज्ञानुसार काम करना चाहिये, यही निष्काम कर्म है।

ईश्वरप्राप्तिकी इच्छा होवे या न होवे, वह प्राप्त होता ही है, होवेगा ही। केवल ईश्वरकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। जिस एकके पालनसे परमात्मा मिल जायँ, जन्म-मरणसे छूट जाय, अटल शान्ति मिले, अपार आनन्द हो जाय।

यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन् स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(गीता ६। २२)

परमात्माकी प्राप्तिरूप जिस लाभको प्राप्त होकर उससे अधिक

दूसरा कुछ भी लाभ नहीं मानता और परमात्मप्राप्तिरूप जिस अवस्थामें स्थित योगी बड़े भारी दुःखसे भी चलायमान नहीं होता।

हम लाखों वर्षोंसे जन्मते-मरते आये हैं। उस भयानक दुःखसे छूट जायँ तो ऐसे एकके पालनमें कुछ क्लेश भी हुआ तो कोई हानि नहीं। मामूली रुपया कमानेमें कितना कष्ट होता है और जब रुपया चला जाता है तब तो अपार कष्ट होता है। ऐसे तुच्छ धनके लिये हम जीवन बिता देते हैं, यदि परमात्माकी प्राप्तिमें जीवन बितानेमें कुछ कठिनाई होवे तो कोई हानि नहीं। वह एक ही बात है, वह यह है कि दुनियामें सबको नारायण समझकर तन, मन, धनसे सेवा करनी चाहिये। रामायणमें कहा है—

परहित बस जिन्हकें मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

इसलिये सबकी सेवा-सत्कार करना उन प्रभुहीकी सेवा-सत्कार करना है, इस सेवासे परमगतिको प्राप्त होता है।

स्त्रियोंको भी सेवासे परमगति बतलायी है, अपने कर्मोंद्वारा सबकी सेवा करनेसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। सेवा करनेवाला जो सर्वभूतहित रत है, उसको परमात्माके समान समझो, यदि परमात्माके एक गुणको भी जान लेवे तो बेड़ा पार हो जाय, यानी भगवान् सर्वभूतहित रत हैं, यह जाननेसे मुक्त हो जाता है। हम तो उसको परिश्रम समझते हैं। परमात्माकी दया माननी चाहिये, अपार दया माननी चाहिये।

जिस प्रकार क्षत्रिय* बालकको युवराज-पद दिया गया, उसी प्रकार हमको भी परमात्माने मनुष्यरूप युवराज-पद दिया है।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

(गीता ९।२२)

* यह कहानी गीताप्रेससे प्रकाशित उपदेशप्रद कहानियाँ नामक पुस्तकमें देखनी चाहिये।

जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वरको निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्कामभावसे भजते हैं, उन नित्य-निरन्तर मेरा चिन्तन करनेवाले पुरुषोंका योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर देता हूँ।

जो प्रभुसे मिलना चाहते हैं, प्रभु उससे मिलते हैं, मदद देते हैं। '**ते प्राप्नुवन्ति मामेव**' प्रभुमें प्रभुत्व यही है कि वे सबके हितमें रत हैं। जो अपना तन, मन, धन परमात्माकी सेवामें अर्पण कर देता है, परमात्मा उसके लौकिक और अलौकिक साधनकी रक्षा और उसकी पूर्ति करते हैं।

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम्।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति॥

(गीता ५। २९)

मेरा भक्त मुझको सब यज्ञ और तपोंका भोगनेवाला, सम्पूर्ण लोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर तथा सम्पूर्ण भूत-प्राणियोंका सुहृद् अर्थात् स्वार्थरहित दयालु और प्रेमी, ऐसा तत्त्वसे जानकर शान्तिको प्राप्त होता है।

इसका अर्थ जब हम समझ लेते हैं कि उससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं है, ऐसा समझते ही कल्याण हो जायगा, इसमें कोई शंका नहीं है। भगवान् कहते हैं—

यो मामेवमसम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमम्।
स सर्वविद्भजति मां सर्वभावेन भारत॥

(गीता १५। १९)

हे भारत! जो ज्ञानी पुरुष मुझको इस प्रकार तत्त्वसे पुरुषोत्तम जानता है, वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकारसे निरन्तर मुझ वासुदेव परमेश्वरको ही भजता है।

जो मुझको भजता है वह मुक्त ही है। वह कैसे भजता है? उदाहरण—एक क्षत्रियने एक राजाकी मदद युद्धमें की और

विजयी भी हुआ। राजाने उसके लिये तीन घंटेतक खजाना खुलवा दिया और कहा जो चाहो सो ले जा सकते हो। उसने केवल रत्न और हीरा ही लिये तथा सोना, चाँदी सब छोड़ दिया, यानी संसारमें आकर हीरा-रत्न जो हरिनाम है, वही लेना चाहिये। दूसरे भोगोंमें नहीं रमना ही बुद्धिमानी है।

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः॥

(गीता ५। २२)

जो ये इन्द्रिय तथा विषयोंके संयोगसे उत्पन्न होनेवाले सब भोग हैं, वे यद्यपि विषयी पुरुषोंको सुखरूप भासते हैं तो भी दुःखके ही हेतु हैं और आदि-अन्तवाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान् विवेकी पुरुष उनमें नहीं रमता।

भगवान् ही सबकी आत्मा हैं, अतः मैं सबमें भगवान्‌की ही पूजा करूँगा। भगवान् यह भी कहते हैं—

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।
देवान्देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि॥

(गीता ७। २३)

परंतु उन अल्प बुद्धिवालोंका वह फल नाशवान् है तथा वे देवताओंको पूजनेवाले देवताओंको प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त चाहे जैसे ही भजें, अन्तमें वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

जो यह बात जानता है वह भगवान्‌को ही पूजता है। '**भोक्तारं यज्ञतपसाम्**' का भाव समझनेका फल है कि साधक सब कर्म भगवान्‌के अर्पण करता है जिसका वर्णन गीताजीमें ९। २७ में आया है। '**यत्करोषि**'में जो अर्पणकी बात आयी है उसका फल नीचेवाले श्लोकमें कहा गया है।

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २८)

इस प्रकार, जिसके समस्त कर्म मुझ भगवान्‌के अर्पण होते हैं—ऐसे संन्यासयोगसे युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलरूप कर्म-बन्धनसे मुक्त हो जायगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा।

हमलोग मुखसे श्रीकृष्णार्पण कह देते हैं, किन्तु वास्तवमें अर्पण करते नहीं, अतः यह अर्पण नहीं होता। हमारा भोजन, वस्त्र, यज्ञ, तप, दान सब ईश्वरका ही हो। जो परमेश्वरके लिये कुछ देकर मुग्ध हो जाता है वह उत्तम है। जो परमात्माकी सच्ची सेवा करता है, उसका जो कुछ भी परमात्माके काममें लगता है, वह बड़ा प्रसन्न हो जाता है, मुग्ध हो जाता है। वह जिस रूपमें दर्शन चाहता है, प्रभु उसे उसी रूपमें दर्शन देते हैं। जबतक तुम प्रभुको मिल नहीं जाओगे, तबतक तुम नहीं जानोगे। वे प्रभु उनकी आज्ञा-पालनसे मिलते हैं, उनकी आज्ञा है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(गीता १८। ४६)

जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धिको प्राप्त हो जाता है।

संसारी वस्तुमें संकल्प रहनेसे पुनर्जन्म होता है। वासना नहीं रहनी चाहिये। परमात्माका स्वरूप सत्य है, सत्य संकल्पसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। आजकल झूठ तो पद-पदपर बोला जाता है। माताएँ बच्चोंको गाली देती हैं, मिथ्या बोलती हैं, व्यापारी भी मिथ्या बोलते हैं, मिथ्या बोलनेका अभ्यास-सा कर

लिया है, किन्तु जबतक सत्यका पालन नहीं होगा, परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। सत्यके लिये त्रिलोकीका राज्य छोड़ दे। सबकी सेवा करना, दयाभाव रखना यही सार है। इसमें श्रद्धा प्रधान है और उद्धार भी शीघ्र होता है। खूब जोर रखो कि अब मिथ्या वचन नहीं बोलेंगे। सत्यसे मुक्ति और मिथ्यासे नरक होता है।

कुछ भाई भजन-ध्यान करनेवाले भी मिथ्या बोलते हैं, इसीलिये भजनका फल नहीं होता, अपितु वह उल्टा भजनको कलंक लगाता है। लोग कहते हैं वह भजन भी करता है और झूठ भी बोलता है, चोरी भी करता है, इसलिये याद रखो, दंभ, झूठ बड़ा भारी पाप है। निन्दा भी परस्पर नहीं करनी चाहिये। जिसकी निन्दा करोगे, उसका पाप हमको भोगना पड़ेगा।

भगवान् सब दुनियाको आराम पहुँचानेवाले हैं, आनन्द देनेवाले हैं, इसलिये अपना कर्तव्य भी आनन्द देना है। निरन्तर चिन्तन तो सबमें है, किन्तु सेवासे अधिक चिन्तन होता है। भगवद्दर्शन, भगवत्-प्रेम, भगवच्चिन्तन सब सुख पहुँचानेके लिये है। चिन्तन करनेकी अपेक्षा सुख पहुँचाना श्रेष्ठ है।

राधाजीका तो यही उद्देश्य था कि किसी प्रकार कृष्णको आनन्द पहुँचे। इनसे भी श्रेष्ठ वे हैं जो भगवान्‌की जैसी इच्छा हो चलावें, अपनी स्वतन्त्रता नहीं रहती। भगवान्‌में प्रेम होनेकी इच्छा होना उत्तम है। उससे उत्तम चिन्तन है, इसमें कामनाका क्रमसे त्याग हो जाता है। हम भगवान्‌की खुशीसे ही खुशी हैं।

मोटे रूपमें भगवदर्थ और भगवदर्पण एक ही है। भगवान् कहते हैं—'**मन्मना भव**' गीतामें सबसे ऊँचा श्लोक है—

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं। इसके पश्चात् कहते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए और प्रेमपूर्वक भजनेवाले भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

फल तो परमात्माकी प्राप्ति ही है। चाहनेवालेकी अपेक्षा नहीं चाहनेवाला उत्तम है। भगवान् देंगे, खुशीसे ही स्वतः देंगे। भगवान् सोचते हैं यह चाहता नहीं है, इसलिये इसे अवश्य देना चाहिये। यह तो भगवान्‌की दया है कि हमारी सेवा स्वीकार करते हैं।

भगवान् असंख्य कोटि जीवोंमेंसे चुनकर कर्मानुसार ही मनुष्य-शरीर देते हैं। ऐसा सोचकर हमको कोशिश करनी चाहिये। हम जिस कामके लिये आये हैं उसको निभाना चाहिये, आत्मकल्याण करना चाहिये। बारम्बारके जन्म-मरणको मिटानेके लिये ही यह मनुष्य-शरीर मिला है। इससे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। ऐसा मनुष्य-शरीर पाकर भी यदि उत्तम कार्य नहीं किया तो घोर गति प्राप्त होगी। इसलिये हमको जो मनुष्य-शरीर मिला है, उसमें सुखरूप खेती इतनी करनी चाहिये कि सभी परमानन्दसुख भोगें और सारी दुनियाको आनन्दमयी बना देवें।

समयका सदुपयोग भगवत्प्राप्तिमें है

प्रश्न—शरीरको आराम देनेमें, जरा-सी ढिलाई देनेमें काम बिगड़ जाता है, क्या करना चाहिये? अब तो जितनी जल्दी हो सके शीघ्र लाभ हो जाना चाहिये, क्योंकि समयका पता नहीं और अवस्था भी नहीं रही।

उत्तर—बात यह है कि इन्द्रियोंकी लौकिक मान-बड़ाई-प्रतिष्ठामें लोग बह जाते हैं तथा वर्तमान शिक्षाकी पुस्तकोंमें विष भरा रहता है। धन चाहनेवाले कभी सत्-शिक्षा नहीं दिया करते, निःस्वार्थी ही दे सकता है। हर समय ध्यान रखना चाहिये कि एक मिनट भी खाली नहीं जाये। जो समय चला गया लाख रुपया खर्च करनेपर भी वापस नहीं आ सकता। जिसने समयको जीत लिया है, उसने कालको जीत लिया है।

परमात्माकी प्राप्ति नहीं हो, तबतक यही सोचता रहे कि हमारा समय अभी काममें नहीं आया। यह भी समझना चाहिये कि एक क्षणमें भगवान् मिल सकते हैं। महात्माओंके कहनेसे मालूम पड़ता है कि वह क्षण भी परमात्माकी कृपासे उसे प्राप्त होता है। जो सब प्रकारसे उनकी शरण होता है, उसको प्रेम होता है, विरह-व्याकुलतासे भी अधिक प्रेम होता है, भगवान्के चिन्तनके लिये रोना चाहिये, बार-बार प्रार्थना करनी चाहिये कि हे नाथ! आप परम दयालु, अन्तर्यामी हैं, हे दयालु! आपके रहते मेरी यह दशा हो रही है। आपको उलाहना नहीं दे सकता, क्योंकि मैं आपकी आज्ञाका पालन नहीं करता और उलाहना इसलिये दे सकता हूँ कि आप दयालु हैं, इसलिये हे प्रभो! यदि आप दर्शन न दे सकें तो अपनी विरह-व्याकुलता तो दीजिये।

---

* प्रवचन दिनांक १७। ४। १९३७ स्वर्गाश्रम।

राजाजी—मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि भगवान्‌की कृपासे ही कुछ होगा। मुझे रोना तो आता है और महात्मा लोग भी कहते हैं कि रोना अच्छा होता है, किन्तु मुझे तो विश्वास होता है कि मेरा प्रयत्न व्यर्थ होगा और भगवान्‌की कृपासे ही सब कुछ होगा, क्योंकि रोता हूँ बहुत, एक डेढ़ घंटा लगातार, पर रोना खतम होते ही चित्तवृत्ति पहले-सरीखी हो जाती है। भगवान् और उनके भक्तोंके चरित्र समझमें नहीं आते, भगवान् जब कुछ देते हैं तो साधन बतलाकर और फिर कहते हैं कि इसने साधन किया, इसलिये मैं वशमें हूँ। अपने ऊपर बात नहीं आने देते, दया स्वतः करते हैं।

उत्तर—जब संसारी लोग इस प्रकारकी आड़ लेते हैं कि संसारी बदनामी अपने ऊपर नहीं लेते, इसी प्रकार भगवान् भी अपने ऊपर नहीं लेते और इसी प्रकार महात्मा भी होते हैं। सत्यकी रक्षा करते हुए बात बनाना यही भगवान्‌का, भक्तोंका स्वभाव है और यही उनमें विचित्रता है।

'अमानी मानदो मान्यो लोकस्वामी'—यह उनका स्वभाव है। लोग उनको मान देते हैं किन्तु वे लेते नहीं, चाहते नहीं, यानी सर्वदा प्रसन्न रहना ही सबसे उत्तम है।

गोपियोंको मात्र भगवान्‌की क्रियाओंपर आनन्द होता था, उन्होंने उद्धवको भी प्रेममें पागल कर दिया था। किसी भी प्रकार सर्वत्र प्रभुका दर्शन होता रहे और यह विश्वास रहे कि प्रभु सर्वत्र हैं, कहाँ हैं, यह नहीं मालूम होवे तो भी निश्चय करे, यही विश्वास भगवान्‌की प्राप्तिमें सहायक होता है। उनका स्वरूप मनमें रहे। नेत्रोंसे पत्ते देखता है, परन्तु मनसे तो पत्ते-पत्तेमें भगवान्‌को देखता है। हम बालकपनमें देखते थे कि हम जिधर जाते हैं चन्द्रमा हमारे साथ आता है, इसी प्रकार अब भी हमें भगवान्‌को उसी प्रकार साथ-साथ देखना चाहिये। यह प्रत्यक्ष बात है, यह प्रभुकी दया

है, एकान्तमें बैठकर प्रभुसे बात करे, प्रार्थना करे, शीघ्र आनेके लिये कहे। मनुष्य जो निश्चय कर लेता है, भगवान् उसी निश्चयको पूर्ण कर देते हैं।

सूखे वृक्षोंमें भी वेदोंके वाक्यसे हरियाली आ जाती है। यहाँ सूखे वृक्ष वे हैं जो अज्ञानी हैं, उनको भी भगवन्नाम सुनते ही हरियाली यानी परम आनन्द हो जाता है। गीताके अनुसार साधन करे।

शनैः शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्॥

(गीता ६। २५)

क्रम-क्रमसे अभ्यास करता हुआ उपरतिको प्राप्त हो तथा धैर्ययुक्त बुद्धिके द्वारा मनको परमात्मामें स्थित करके परमात्माके सिवा और कुछ भी चिन्तन न करे।

फिर भी कुछ चिन्तन होवे तो

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

(गीता ६। २६)

यह स्थित न रहनेवाला और चञ्चल मन जिस-जिस शब्दादि विषयके निमित्तसे संसारमें विचरता है उस-उस विषयसे रोककर यानी हटाकर इसे बार-बार परमात्मामें ही निरुद्ध करे।

ऊपर लिखे श्लोकके अनुसार साधन करना चाहिये। ऐसा करनेसे यह मन भगवान्से प्रेम करने लगता है और उसकी नीचे लिखे हुए श्लोकमें वर्णित स्थिति हो जाती है—

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥

(गीता ६। २७)

क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पापसे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए योगीको उत्तम आनन्द प्राप्त होता है।

उपरामताके द्वारा नित्य-निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगावे। हमलोगोंको चाहिये कि संसारको भुला देवें, फिर शरीरको भी भुला देवें तथा विज्ञानानन्दघन ब्रह्ममें तन्मय हो जायँ।

तद्बुद्धयस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ।
गच्छन्त्यपुनरावृत्तिं ज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥

(गीता ५। १७)

जिनका मन तद्रूप हो रहा है, जिनकी बुद्धि तद्रूप हो रही है और सच्चिदानन्दघन परमात्मामें ही जिनकी निरन्तर एकीभावसे स्थिति है, ऐसे तत्परायण पुरुष ज्ञानके द्वारा पापरहित होकर अपुनरावृत्तिको अर्थात् परमगतिको प्राप्त होते हैं।

जिसका ज्ञानरूपी नेत्र खुल जाता है उसको संसारमें नहीं आना पड़ता, उनकी दृष्टिमें सृष्टि नहीं होती, वे जाग उठते हैं। उनके शरीरमें मन-बुद्धि, अन्तःकरण हमको दीखता है, उनके अन्तःकरणमें तो संसारका चित्र ऐसा हो जाता है, जैसे स्वप्नसे जागनेके बाद हमें स्वप्नका चित्र होता है। उनके शरीरका कार्य प्रारब्धसे होता है। समष्टि चेतन परमात्मा सर्वत्र रहता है, इसलिये उसका कार्य रुकने नहीं पाता। जिस प्रकार हम स्वप्नसे लिपायमान नहीं होते, उसी प्रकार वे भी संसारसे लिपायमान नहीं होते। प्रभुकी दयासे उनको यथार्थ ज्ञान हो जाता है। असली संग तो भगवत्-वचनका ही है। गीताका भाव-अर्थ समझनेसे ही उद्धार हो जाता है और मनुष्योंका संग तो झूठा है। भगवान्के वचनोंको सुननेसे ही आनन्द होता है फिर मनसे मनन करे तो परमानन्दकी प्राप्तिमें क्या शंका है।

हमको फल नहीं होता, क्योंकि हमारे समझनेमें, धारण करनेमें कमी रह जाती है, इसलिये उसका बार-बार श्रवण करना चाहिये।

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

(गीता २।२९)

कोई एक महापुरुष ही इस आत्माको आश्चर्यकी भाँति देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही इसके तत्त्वका आश्चर्यकी भाँति वर्णन करता है तथा दूसरा कोई अधिकारी पुरुष ही इसे आश्चर्यकी भाँति सुनता है और कोई-कोई तो सुनकर भी इसको नहीं जानता।

तब तो अद्भुत परमात्मा भी अद्भुत हो जाता है और यह तो युक्तिसंगत ही है कि परमात्माका वास्तविक स्वरूप बुद्धिके अन्तर्गत नहीं आ सकता, क्योंकि वह बुद्धिसे परे है। प्रतिबिम्ब-सा ही आता है। मनकी कल्पना वाणीद्वारा नहीं कही जा सकती। जो सुना जाता है, मन उसका मनन नहीं कर सकता, मन जितना मनन करता है, बुद्धिमें वह पूरा प्रविष्ट नहीं होता, जितना बुद्धि धारण करती है, उतना आत्मा धारण नहीं करता, इसलिये पुनः-पुनः श्रवण करनेसे ही आनन्द हो सकता है। संसारके आनन्दसे उसका मिलान न करे, उस आनन्दमें दुःख, क्लेश, विकार, बाधा नहीं है, वह अतीन्द्रिय है, उसको लक्ष्य कराकर ये पदार्थ संसारमें वापस आ जाते हैं और वह साधक साध्य वस्तु पाकर परमानन्दमें लीन हो जाता है।

जिन पुरुषोंको सदैव आनन्द रहता है ऐसे महापुरुषोंका जीवन, चरित्र, स्वरूप-चिन्तन करनेसे सदैव आनन्द रह सकता है।

माता-बहिनों, भाइयोंसे यही प्रार्थना है कि समय व्यर्थ नहीं

बिताना चाहिये। हमलोग तीर्थका नाम लेकर इसलिये आये हैं ताकि हमारा अमूल्य समय उत्तम रीतिसे बीते। हमलोगोंको अपना समय परमात्माके ध्यानमें बिताना चाहिये।

दूसरेकी निन्दा सुननेमें, आलस्यमें, बीड़ी, तम्बाकू आदिमें समय बिताना कलंक लगाना है, दुर्गतिको जाना है। यह समय बार-बार नहीं मिलता। भाइयो! इस समयको सावधानीसे बिताना चाहिये और दूसरोंसे भी ऐसा करनेके लिये प्रार्थना करनी चाहिये। प्रभुके ध्यानमें, गुण, प्रभाव सुननेमें जो समय बीतता है वही कामका है, बाकीका व्यर्थ ही जाता है। मैंने सुना है कि मनुष्यका उद्धार एक क्षणमें भी हो सकता है, किन्तु हमारे करोड़ों क्षण बीत गये, अभीतक उद्धार नहीं हुआ। बात यही हुई कि—

आये थे कछु लाभको खोय चले सब मूल।
जब जाओगे सेठ पा पले पड़ेगी धूल॥
राम-राम रटते रहो जब लग घटमें प्रान।
कबहुँ तो दीनदयालके भनक पड़ेगी कान॥
हाड़ जले ज्यों लाकड़ी केश जले ज्यों घास।
सब जग जलता देखकर भये कबीर उदास॥

इन सब बातोंको सोचकर अपना समय उत्तम-उत्तम बातोंमें बिताना चाहिये, दुर्गुण बिलकुल छोड़ देना चाहिये। दुर्गुण नहीं छोड़नेसे परलोकमें महा अनर्थ होगा।

दुनियाके लोग कोई भी क्लेश, बीमारी नहीं चाहते, किन्तु वह होता है पापोंसे। सदाचार, सद्गुण अमृततुल्य हैं, ये लोक-परलोकमें आनन्द देते हैं। दुराचार-दुर्गुणको विष समझना चाहिये। ऐसा समझनेपर उन्हें आप स्वतः ही स्वीकार नहीं करेंगे।

हर समय प्रसन्न और मुग्ध रहो

आज एक ऐसे साधनकी बात करें, जिससे साधनकालमें तथा लक्ष्यकी पूर्तिमें आनन्द-ही-आनन्द हो। ऐसे बहुतसे साधन हैं जिनमें साधनकालमें कष्ट होता है और परिणाममें सुख, किन्तु इस साधनमें तो दोनों अवस्थामें आनन्द ही होगा। हर समय आनन्द और प्रसन्नता रहेगी। अन्य सब साधनोंमें कष्ट होता है, किन्तु इस साधनमें कष्ट भी नहीं होगा। जिस साधनमें थोड़ा बहुत कष्ट होता हो उसको करनेमें तो कोई मना भी कर सकता है, किन्तु जिस साधनमें किञ्चित् भी कष्ट न हो, वह साधन करनेमें तो कोई मना नहीं करेगा। इसमें शान्ति और आनन्द दोनोंका अनुभव होता है। इसमें एक बात और भी विशेष है। वह यह है कि इससे जी कभी नहीं भरता। छोटे-से-छोटे विषयानन्दके लिये हर एक आदमी कोशिश करता है। इन्द्रियोंद्वारा आनन्दका उपभोग करनेपर उसका जी अघा जाता है। जैसे पेटभर भोजन करनेके बाद और स्वादिष्ट अन्न खानेकी इच्छा नहीं होती। विषयोंमें जो आनन्द है वह कम हो जाता है, वह साधारण आनन्द है। इस साधनमें जो आनन्द आता है, वह अलौकिक होता है तथा कम न होते हुए उत्तरोत्तर बढ़ते ही जाता है। ऐसी अवस्थामें भी यदि कोई साधन करनेसे इन्कार करे तो क्या किया जाय? यह साधन बहुत सुगम, शास्त्रसम्मत तथा युक्तिसंगत है। वह यह है कि हर समय प्रसन्न और मुग्ध रहो। किन्तु ऐसी प्रसन्नता और मुग्धता कैसे प्राप्त हो? प्रभुकी अपनेपर बड़ी भारी दया है, अतएव अपना कल्याण जरूर होगा। इसमें यत्किञ्चित् भी शंकाके लिये जगह नहीं है। हर समय भगवान्‌का स्मरण कर-

करके प्रसन्न रहे, स्मरणमें मुग्ध हो जावे। प्रसन्नता और आनन्द भगवान्‌का ही तो स्वरूप है। किसी भी स्वरूपका स्मरण करो, क्योंकि सब भगवान्‌का ही तो स्वरूप है। या तो अपने इष्टदेवका स्मरण करो या भगवान्‌के किसी भी स्वरूपका स्मरण करो, जैसे नारायण, राम, शिव, कृष्ण और उनका निराकार स्वरूप आदि।

कोई कहे कि भगवान्‌के स्मरणमें उसको आनन्द प्रतीत नहीं होता। ठीक है आनन्द नहीं प्रतीत होता तो न होने दो, किन्तु भगवत्-स्मरणमें आनन्द-ही-आनन्द है, इसके सिवाय और कुछ नहीं है। ऐसा माननेमें तो उसको कोई आपत्ति नहीं है। माननेमें आपत्ति हो ही क्या सकती है। माननेमें ही तो कल्याण है, यदि वह केवल मान ले कि भगवत्-स्मरणमें आनन्द है तो उसको आगे जाकर आनन्द जरूर मालूम होगा। इसमें शंकाकी कोई बात नहीं। भगवान् दयासागर हैं, यदि वह ऐसा मानने लग जाय तो भगवान् दयामय होनेके कारण उसको आनन्दकी प्राप्ति अवश्य ही करा देंगे। उनकी दयालुतामें सब बातोंके लिये गुंजाइश है। इस साधनसे निश्चय कल्याण होगा, क्योंकि प्रभुकी दया अपार है, उसकी सीमा नहीं है। भगवत्-स्वरूपके साथ उनके गुणोंकी, प्रभावकी, रहस्यकी, तत्त्वकी बातोंको याद कर लो और उनमें ही मुग्ध रहो। उन्हींका स्वरूप देखकर उसमें विभोर रहो। भगवान् आनन्दके सागर हैं। अपनेको आनन्दमें सदा डुबाये रखो। उसमेंसे बाहर ही न निकलो, डूबे रहो, क्योंकि भगवान् आनन्दस्वरूप हैं, उनके ही स्वरूपमें डूबे रहनेसे आनन्द तो प्राप्त होगा ही। यदि आपका मन न माने तो न माने, मनकी परवाह मत करो, आनन्द-सागरमें डूबे ही रहो। न रह सको तो ऐसा समझते रहो कि इस साधनमें तथा इसके परिणाममें आनन्द-ही-आनन्द है। आनन्दके सिवाय और कुछ भी उसमें नहीं है, उसमें किसीकी गुंजाइश भी नहीं है।

भगवान्‌की तो बड़ी ही दया है। देखिये भगवान् यदि मनुष्य जन्म नहीं देते, पहाड़ोंपर वृक्षोंका जन्म दे देते तो हम क्या कर सकते थे, किन्तु यह तो भगवान्‌की अपार दया है कि हमें मनुष्य-जन्म दिया, फिर भगवान्‌के स्मरणमें मुग्ध कैसे न हों? इसके साथ-साथ आपका जन्म आर्यावर्तमें हुआ जो कि आध्यात्मिकतासे भरी हुई भूमि है और योगभूमि है। यही एक आध्यात्मभूमि है और उसीमें हमारा जन्म हुआ। यह कितनी सराहनीय बात है। किसी अन्य जगह जन्म होता तो हम क्या कर सकते थे। इसके अलावा गंगाजीका किनारा और वहाँ उसकी रेणुकामें भगवच्चर्चाका सुअवसर मिला, इतनी बातोंका एक साथ मेल जुटा देनेके बाद भी क्या कल्याणमें शंका हो सकती है। कल्याण तो निश्चय ही होगा। ऐसा माननेमें क्या आपत्ति है? कल्याण निश्चय होगा, किन्तु वह होना कठिन है, कोई ऐसा कहे तो विचार करो कि इसमें कठिनता कहाँ है। भगवान् दयासागर हैं। समुद्रमेंसे कितने ही लोटे जल निकाल लिया जाय, क्या उसमें कभी कमी हो सकती है? कभी नहीं। जो आदमी मेरा कल्याण निश्चय होगा ऐसा मान ले, उसका कल्याण होनेमें रत्तीभर भी शंका नहीं है। उसका कल्याण तो होगा ही, किन्तु यदि उसे ऐसा मालूम पड़े कि शायद कल्याण हो या न हो तो उसका कल्याण होनेमें शंका ही समझिये। भगवान् तो सब भूत-समुदायपर अहैतुकी दया करते हैं। यदि ऐसा न होता तो क्या हम अपनी योग्यता प्रमाणित करके उसकी अपार दयाके पात्र बन सकते थे। भगवन्! मैं तो किसी लायक नहीं हूँ, मुझे निमित्त बनाकर आपको जो कुछ करना हो सो कर लेना, मैं कर ही क्या सकता हूँ और जो कुछ मेरे द्वारा बनता है, वह सब आपकी दयाका ही फल है।

आदमी जिसको प्रसन्न करना चाहता है, उसीकी स्तुति गाता

है। हमें तो किसी व्यक्तिसे प्रयोजन नहीं है। हमें तो केवल भगवान्‌को ही प्रसन्न करना है, अतएव हमें चाहिये कि हम उन्हींकी स्तुति करें। स्तुति करते समय प्रेम न हो तो न हुआ करे, उसकी कोई परवाह नहीं, किन्तु स्तुति जरूर करनी चाहिये। भगवान्‌पर भरोसा रखे कि हमारेमें प्रेम न होते हुए भी भगवान्‌को तो मुझसे प्रेम करना ही पड़ेगा और भगवान् करेंगे ही। यदि कोई मेरेपर विश्वास करे कि उसको जो कुछ चीज चाहिये वह मैं उसे जरूर दूँगा तो मेरी यह कोशिश जरूर होगी कि उसका मेरेपर विश्वास न घटे और इसी ख्यालसे मैं उसको वह चीज दूँगा। जब ऐसा मनुष्योंमें देखनेमें आता है तो प्रेम न होते हुए भी यदि आप भगवान्‌की स्तुति करेंगे तो क्या भगवान् आपसे प्रेम करनेके लिये बाध्य नहीं होंगे। अवश्य होंगे, इसमें संदेह ही क्या है? भगवान्‌को हर प्रकारकी सहायता देनी पड़ेगी और वह देंगे, क्योंकि उनके सिवाय और कौन सहायता देगा, इतना ही नहीं अपितु वह ज्यादा प्रेम करके आपको बतलावेंगे। उनका आपके लिये इतना प्रेम होगा कि वे आपसे मिले बिना ठहर नहीं सकेंगे। यदि भगवान् इतने कृपालु हैं तो वे जल्दी क्यों नहीं मिलते? विश्वास रखो कि जो कुछ विलम्ब भगवान्‌के मिलनमें हो रहा है, वह आपके कल्याणके लिये ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। भगवान्‌के विलम्बसे मिलनेसे आपकी व्याकुलता बढ़ती जाती है। भगवान्‌की दयाका तो मनुष्य अनुमान ही नहीं कर सकता। जितनी दया उसके समझमें आती है, उससे कई गुणा अधिक भगवान्‌की दया होती है। उनकी दयाका अनुभव करनेमें जो आनन्द है, वैसा आनन्द विषयोंमें आपको मिल ही नहीं सकता।

अन्तःकरणमें यदि प्रसन्नता न मालूम हो तो न होने दो। केवल सच्ची कल्पना ही कर लो कि अन्तःकरण प्रसन्नतासे भरा हुआ है

तो वह संकल्प ही सत्य हो जायगा। भगवान्‌की मददसे वह संकल्प सत्य हो जाता है—इसमें कोई सन्देह नहीं। भगवान्‌ने कहा है—

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥

(गीता ६। २७)

जिसका मन अच्छी प्रकार शान्त है, जो पापसे रहित है, जिसका रजोगुण शान्त हो गया है ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभाव हुए योगीको अत्युत्तम आनन्द प्राप्त होता है।

युञ्जन्नेवं सदाऽऽत्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

(गीता ६। २८)

पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ सुखपूर्वक परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दका अनुभव करता है। देखो साधनमें सुख और परिणाममें परमसुखकी प्राप्ति होती है। इसमें शंकाके लिये स्थान नहीं है। ये प्रत्यक्ष श्रीकृष्णभगवान्‌के वचन हैं, वे कदापि असत्य नहीं हो सकते। प्रत्यक्ष साधन करो और उसकी सत्यताका प्रमाण ले लो। जब इस आनन्दमें रस आने लग जायगा तो दूसरा और कोई साधन करनेकी तरफ आपका ख्याल भी नहीं जायगा। इधर-उधर ख्याल जायगा यह शंका ही क्यों? रस चखनेके बाद इधर-उधर जा ही नहीं पायेगा। प्रसन्नतामें इतना मुग्ध होकर रहना चाहिये कि किसी बातकी चिन्ता न हो। चिन्ता किस बातकी। भगवान्‌की शरण लेनेके बाद चिन्ताका काम ही क्या है? वह तो पास ही नहीं आ सकती। प्रसन्नतामें तो जीने-मरनेकी भी परवाह नहीं होती। वह तो केवल उसमें ही मुग्ध रहता है। उस समय उसे न तो जीनेसे प्रयोजन रहता है न मरनेसे, वह तो जीने-मरनेकी

इच्छा ही नहीं करता। वहाँ तो इस इच्छाका अभाव ही रहता है। जब आनन्दमें मनुष्यकी ऐसी हालत होती है तो भगवान् स्वयं उसकी सम्भाल करते हैं। इसके लिये आधार क्या है? आधार प्रभुका प्रेम और दया है। इससे बढ़कर और आधार कैसा हो सकता है? बच्चेको किसका आधार रहता है? अपनी माताके दूधके लिये बच्चा रोता है तो माता उसको तुरन्त दूध पिलाती है। यह हो सकता है कि माता कभी विलम्ब कर जाय, किन्तु भगवान् क्या ऐसा विलम्ब कर सकते हैं? यदि करते हैं तो यही समझना चाहिये कि उसीमें अपना अधिक कल्याण है। भगवान् सर्वत्र हैं, वही हमारा सच्चा हित किसमें है, यह जानते हैं। अतएव उनपर खूब विश्वास करके किसी बातकी फिकर न रखे। गूँगा मिश्री खाकर आनन्दमें मुग्ध हो जाता है, वैसे ही भगवान्‌की दयाका विचार करके उसीमें निमग्न हो जाना चाहिये और किसीका विचार करे ही नहीं। भगवान्‌की राजीमें राजी रहे। फिर भगवान् खड्डेमें क्यों न डाल दें, उसमें कोई आपत्ति नहीं, उसीमें प्रसन्न रहे। उस आनन्द- साधनको स्वयं खूब करके उसका प्रचार करे, ताकि उसके फलस्वरूप सभी लोग आनन्दमें मुग्ध होते रहें। आदमीको तो ऐसा मुग्ध होना चाहिये कि उस समय कोई उसको अग्निमें बैठा दे तो भी उसको मालूम न पड़े। कोई विकार उत्पन्न न हो। यदि विकार उत्पन्न हो तो केवल मूर्खता ही उसका कारण हो सकता है। अतएव हर एक आदमीको चाहिये कि वह अपनी शक्तिके अनुसार हमेशा यह साधन करनेका प्रयास करता रहे और भगवान्‌की असीम कृपाका अनुभव मुग्ध होकर करता रहे। इससे उसको साधनकालमें आनन्द होगा तथा परिणाममें आनन्दकी प्राप्ति होगी, इसमें कोई शंका नहीं है।
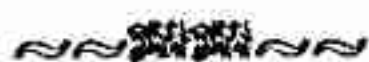
सत्संगकी सार-सार बातें

१. जो भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार चले, वही उनका प्रेमी है।

२. हमारी हर रोज परीक्षा होती है, क्योंकि हमें उनके विधानमें आनन्द नहीं होता है।

३. वास्तविक प्रेमी प्रह्लाद थे, उनपर चाहे कितना भी दुःख आता फिर भी वे आनन्द ही मानते थे।

४. जिसे किसी प्रकारका भी दुःख पड़नेपर दुखी हो गया वह उतने अंशमें प्रेमी नहीं है।

५. जो पूरा प्रेमी है उसके ऊपर जितनी भी आपत्ति आती है, उसमें वह उतना ही आनन्द मानता है, जैसे सुधन्वा।

६. भगवान्‌के प्रेमी भक्तोंको हर वक्त भगवान्‌की दयाका दर्शन होता रहता है।

७. हर वक्त भगवान्‌को याद रखना चाहिये। भगवान् ऐसी चीज नहीं हैं जिसे प्रेमी भुला सके, ऐसे आनन्दकन्दको कोई कैसे भूल सकता है?

८. जो भगवान्‌की आज्ञाका पालन करनेवाला होगा, उसके प्राण भले ही चले जायँ, परन्तु वह कभी एक तिलभर भी भगवान्‌के विरुद्ध नहीं जा सकता।

९. प्रेमी तो प्रभुने जो विधान कर दिया, उसमें सदा ही आनन्द मानता है, जो फैसला हो जाय उसमें आनन्द ही मानता है।

१०. चाहे जिस भावसे लगो, ईश्वरमें लगो। इसके पश्चात् ईश्वर पिंड छोड़ता ही नहीं।

११. '**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**' (गीता १८।६६) सब धर्मोंको छोड़कर मेरी शरण हो जा, पशु-पक्षीतकका शरण लेकर उद्धार हो गया। भीलनी, मीराबाई, करमा, गार्गी, सदन कसाई, धर्मव्याध, कबीर, विभीषण आदि सभीका शरणसे कल्याण हो गया। भगवान् कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रति जानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति॥

(गीता ९। ३०-३१)

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभावसे मेरा भक्त होकर मुझको भजता है तो वह साधु ही माननेयोग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है। अर्थात् उसने भलीभाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वरके भजनके समान अन्य कुछ भी नहीं है। वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहनेवाली परम शान्तिको प्राप्त होता है। हे अर्जुन! तू निश्चयपूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता।

सबसे उत्तम बात ईश्वरकी शरण है, यह बहुत सुगम है। बालक, स्त्री सब समझ सकते हैं, साधनमें बहुत सुगम है, मूर्खसे भी मूर्ख इसे समझ सकता है, बुद्धि तो भगवान् दे देते हैं, भगवान् प्रतिज्ञा करते हैं—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते॥

(गीता १०। १०)

उन निरन्तर मेरे ध्यान आदिमें लगे हुए प्रेमपूर्वक भजनेवाले

भक्तोंको मैं वह तत्त्वज्ञानरूप योग देता हूँ, जिससे वे मुझको ही प्राप्त होते हैं।

सारी विघ्न-बाधाओंको मैं नष्ट कर दूँगा, वह तो केवल शरण हो जाय। इसके समान संसारमें कोई भी सुगम मार्ग नहीं है। भगवान् कहते हैं—मैं तेरे हृदयमें बैठा हूँ, तुझे कोई बात पूछनी हो तो मेरेसे पूछ लिया कर। इस भावसे पूछे—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

(गीता २। ७)

इसलिये कायरतारूप दोषसे उपहत हुए स्वभाववाला तथा धर्मके विषयमें मोहितचित्त हुआ मैं आपसे पूछता हूँ कि जो साधन निश्चित कल्याणकारक हो, वह मेरे लिये कहिये; क्योंकि मैं आपका शिष्य हूँ, इसलिये आपके शरण हुए मुझको शिक्षा दीजिये।

इस श्लोकका भाव याद कर लेवें। इस भावसे जो उत्तर मिले उसके अनुसार कार्य करना—यह शरण है।

१२. प्रेमसे और चीज नहीं मिलती, प्रेमसे तो केवल भगवान् ही मिलते हैं, रुपया बदलेमें प्रेम नहीं करता, वह तो जड़ है। प्रेमसे तो परमात्मा, उनकी भक्ति और उनके भक्त ही मिलते हैं। ईश्वरकी प्रतिज्ञा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः॥

(गीता ४। ११)

हे अर्जुन! जो भक्त मुझे जिस प्रकार भजते हैं, मैं भी उनको उसी प्रकार भजता हूँ; क्योंकि सभी मनुष्य सब

प्रकारसे मेरे ही मार्गका अनुसरण करते हैं।

१३. सोच-समझकर बोलना चाहिये, हर समय ईश्वरको याद रखना चाहिये।

१४. अपने शरीर और कुटुम्बका निर्वाह जितने कम धनसे हो सके उतना ही कम खर्च करना चाहिये, इसके लिये यथासाध्य बराबर चेष्टा रखनी चाहिये। इसके बाद बचे हुए द्रव्यका अंश अपने वर्ण-धर्मके अनुसार स्वार्थ त्यागकर शास्त्रानुकूल यथासाध्य देव, पितृ, मनुष्य और प्राणियोंके हितमें खर्च करना चाहिये।

१५. भगवान्‌की प्राप्तिके लिये मनुष्यको प्राणपर्यन्त चेष्टा करनी चाहिये। यदि प्राणोंके त्याग करनेकी जरूरत पड़े तो बिना विचारे त्याग देना चाहिये। परमात्माकी प्राप्तिमें बाधा पहुँचनेवाली बात हो तो माता-पिताकी आज्ञाको भी त्याग देना चाहिये। ईश्वरकी भक्ति ही बलवान् है।

१६. ईश्वरकी भक्तिके सामने पतिकी भक्तिमें कुछ कमी आ जाय तो कुछ हरज नहीं।

१७. भगवान् कहते हैं—मैं जिम्मेदारी लेता हूँ, आजसे पहले तुम्हारेसे जो पाप हुए हैं, मैं उनका नाश कर दूँगा, तू नित्य-निरन्तर मेरा भजन करता हुआ काम कर।

१८. सब काम करते हुए भगवत्-स्मरणमें कमी आती हो तो काम भले ही त्याग दे, पर स्मरणको नहीं त्यागे।

१९. भगवत्-चिन्तनमें कमी नहीं आनी चाहिये।

२०. निरन्तर चिन्तनके लिये जितना जोर दिया गया है उतना और किसीके लिये नहीं दिया गया (१८। ५६-५७)।

२१. प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌का काम समझकर भगवान्‌को याद

रखते हुए काम करना चाहिये, किसीसे राग-द्वेष नहीं करना चाहिये।

२२. सत्यका कभी नाश नहीं होता, न कभी परिवर्तन होता है, वह सदा एक रूपमें रहता है।

२३. असली आनन्द परमेश्वरके स्वरूपमें है।

२४. भगवान् आकाशकी भाँति सब जगह व्यापक हैं, विश्वास करना चाहिये। पहले तो सब जगह परमेश्वरकी भावना करनी पड़ती है फिर परमात्मा सब जगह दीखने लग जायेंगे। लाखों महात्माओंने ऐसा कहा है। वे क्या झूठ थोड़े ही कह गये हैं? उनको क्या गरज थी? वे तो हमलोगोंपर दया करके कह गये हैं।

२५. गीता साक्षात् भगवान्के वचन हैं, महापुरुष किसी दुःखसे विचलित नहीं होते। भगवान् अर्जुनको विश्वास दिलाते हैं उस योगको जानना चाहिये, उसके लिये कटिबद्ध होकर चेष्टा करनी चाहिये। गीता ६। २३ के समान उत्तेजना करनेवाला कोई श्लोक नहीं है। एकदम तत्पर होकर साधन करना चाहिये।

२६. ईश्वरको माननेके लिये अन्य प्रमाणोंकी आवश्यकता नहीं है। वह स्वतः प्रमाण है, सम्पूर्ण प्रमाणोंकी सिद्धि ईश्वरसे ही सिद्ध होती है।

२७. सम्पूर्ण श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण ईश्वरका ही प्रतिपादन करते हैं। इसके लिये पर्याप्त प्रमाण आप जहाँ-तहाँ देख सकते हैं, जैसे गीता १८। ६१, १५। १५।

२८. ईश्वरको माननेसे ही उनसे मिलनेकी तथा उनकी प्राप्ति करनेके लिये उनके नाम-जपकी तथा स्वरूपके ध्यानकी चेष्टा होती है।

२९. ईश्वरको माननेसे ईश्वरके गुण, प्रभाव, प्रेमको जाननेकी खोज होती है और गुणोंके श्रवण और मननकी चेष्टा होकर उसकी प्राप्ति होती है, उनसे सम्पूर्ण पापोंका और अवगुणोंका तथा दु:खोंका नाश होकर अन्त:करण पवित्र हो जाता है। ईश्वरको माननेवालेसे किसी प्रकारका दुराचार नहीं घट सकता।

३०. जिन पुरुषोंमें दुराचार देखनेमें आता है वे वास्तवमें ईश्वरको नहीं मानते, वे झूठे ही ईश्वरवादी बने हुए हैं।

३१. सच्चे हृदयसे ईश्वरकी शरण लेनेवालेकी प्रत्यक्ष उन्नति देखनेमें आती है।

३२. श्रुति, स्मृति और शास्त्रोंका गौरव तथा उनकी सार्थकता ईश्वरको माननेसे ही सिद्ध होती है।

३३. गीता, गायत्री, गोविन्द इन तीनोंका नाम संसारसे उद्धार करनेवाला है, गौ और गंगा सहायता करनेवाले हैं तथा स्वर्गमें ले जानेवाले और पापोंका नाश करनेवाले भी हैं।

३४. हमारा भेजा हुआ आदमी छोटे-से-छोटा भी हो तो भी वह बहुत बड़ा है, क्योंकि लोग तो उसे मेरा भेजा हुआ आदमी समझते हैं, उसकी स्थितिको लोग क्या जानें?

३५. भगवान्‌का आश्रय लेकर व्याख्यान देना शुरू कर दो—

मूकं करोति वाचालं पंगुं लंघयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्॥

उनकी कृपासे सब ठीक हो जाता है। यह भाव विश्वास करनेवालेको प्रत्यक्ष है।

३६. **सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।**
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

(गीता १८। ६६)

सम्पूर्ण धर्मोंको अर्थात् सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान्, सर्वाधार परमेश्वरकी ही शरणमें आ जा। मैं तुझे सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।

और धर्मोंका आश्रय छोड़कर मेरे एककी शरण हो जा, हर समय मुझे याद कर (गीता ८। ७), मनसे, बुद्धिसे, शरीरसे जप, ध्यान, मनन, चिन्तन, आज्ञाका पालन जैसे मैं कराऊँ वैसे ही कठपुतलीकी तरह कर। यही शरण है। यज्ञ, दान, तप, त्यागकी कुछ भी बात नहीं है। शास्त्रविहित कर्म कभी नहीं त्यागने चाहिये।

३७. झूठमें इतना पतन है कि युधिष्ठिर-जैसे महापुरुषका रथ नीचे गिर गया। सत्यका महत्त्व यह है कि द्रोणाचार्यजीको कृष्णजीकी अपेक्षा युधिष्ठिरजीका अधिक विश्वास था।

३८. भगवत्प्राप्त पुरुषकी आँखमें आँसू दुःखसे आते ही नहीं।

३९. भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार काम हुआ इसकी कसौटी यह है कि शास्त्र और दैवी सम्पदाके अनुसार काम होता है तथा किसी भी जीवको उस क्रियासे उद्वेग नहीं पहुँचता।

४०. व्यवहारमें निष्काम कर्म होनेकी पहचान यह है कि कर्ताको सुख-दुःख नहीं होता।

४१. लोगोंको प्रह्लादको आदर्श मानकर साधन करना चाहिये, उनका कैसा अच्छा निष्काम भाव है।

४२. घरवालोंकी खूब सेवा करके उनको प्रसन्न करना चाहिये।

४३. भगवान्‌के वैकुण्ठधाम पधारनेके बाद पाण्डवोंने बहुत पश्चात्ताप किया कि हमलोग कितना चूक गये कि भगवान्‌को साधारण मनुष्य समझकर विशेष लाभ नहीं उठा सके।

४४. इन दस बातोंका बचाव करनेसे सत्य स्थिर रहता है—

१. सत्य बोलनेवालेको मितभाषी होना चाहिये।

२. सोचकर बोलना चाहिये।

३. बोलते समय क्रोध नहीं करना चाहिये।

४. लोभसे सावधान रहना चाहिये।

५. कामके वशीभूत नहीं होना चाहिये।

६. निन्दा-स्तुति नहीं करनी चाहिये।

७. भविष्यकी बात नहीं कहनी चाहिये। कल या एक घंटा बाद ऐसा करूँगा, ऐसा नहीं कहना चाहिये।

८. मनमें किसीका भय नहीं करना चाहिये, भय तो दोषी आदमी करता है। अपराध नहीं किया तो भय कैसा?

९. अज्ञानवश मिथ्या बोलता है, यह नहीं बोलना चाहिये।

१०. अहंकारसे सावधान रहना चाहिये।

४५. तन, मन, धन, जनसे सेवा करनी चाहिये, सेवासे अन्तःकरण शुद्ध होता है।

४६. भगवान्‌ने सेवाके लिये साधकको भी आज्ञा दी है। गीता १८। ६८में कहा है कि जो मेरे भक्तोंमें गीताका प्रचार करता है वह मुझे प्राप्त होगा। भगवान् कहते हैं कि वस्तुतः वह मेरा ही काम है। ऐसा मेरा प्रिय करनेवाला पुरुष न हुआ न होगा। ऐसा भविष्यका वचन भगवान्‌ने कहीं नहीं कहा है—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

(गीता १८। ६९)

उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है; तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा

कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।

४७. संसारके सम्बन्धसे ही विकार है। जहाँ संसारसे सम्बन्ध नहीं है वहाँ विकार नहीं है। हर्ष-शोक, अनुकूलता-प्रतिकूलता होना ही विकार है।

४८. निष्कामभावमें कैसी प्रसन्नता है यह तो निष्कामभाव होनेसे ही अनुभवमें आती है। उस प्रसन्नताकी जाति ही दूसरी है। कहीं प्रतिबिम्बसे सूर्य दिखाया जाय तो उस प्रतिबिम्बके सूर्यमें और असली सूर्यमें कितना अन्तर है, इसी प्रकार उस आनन्दमें और संसारी आनन्दमें अन्तर है। निष्कामभाव ही अमृतरूप है, नित्य है; अपार है।

४९. वाणीसे, शरीरसे गीताके भावोंका प्रचार करना बहुत उत्तम है।

५०. सारा संसार भगवान्‌का स्वरूप है, सारे संसारकी जो चेष्टा है वह भगवान्‌की ही चेष्टा है। इस तरह समझनेवालेको भगवान्‌के प्रत्यक्ष दर्शनका फल प्राप्त होता है।

५१. व्यवहार बहुत ऊँचे दर्जेका हो ऐसी कोशिश करनी चाहिये। आपलोगोंको तो पुस्तकोंका और व्याख्यानका बहुत सहारा मिलता है। आपलोग समझते हैं कि हम कुछ नहीं कर सकते, ऐसी मान्यता गलत है। सारे काम भगवान् ही करते हैं। हमें तो केवल निमित्तमात्र बनना है। पुरुषार्थ सारा भगवान्‌का ही है, भगवान् ही कराते हैं, हमें तो केवल निमित्तमात्र बनना है, करना-कराना सारा काम उन्हींका है।

५२. हमलोग इस जगह आये हैं, यह भगवान्‌की विशेष दया है। ऐसे स्थानपर आकर गंगाके प्रवाहसे भी बढ़कर भगवान्‌की दयाका प्रवाह बह रहा है। समय रुकता नहीं है। यहाँसे जानेका समय भी नजदीक आ रहा है। जो कुछ करना है

वह कर लो, नहीं तो घोर पश्चात्ताप करना पड़ेगा।

५३. सबसे उत्तम काम जिससे भगवान्‌की प्राप्ति शीघ्रातिशीघ्र हो, वह यह है कि ईश्वरका हर समय निरन्तर चिन्तन करना और दूसरोंके हितमें निस्वार्थभावसे रत रहना।

५४. भगवान्‌की दयाका पद-पदपर दर्शन करना चाहिये। हमलोग जितनी दया समझते हैं, उतनी ही ज्यादा दया फलती है। पद-पदपर दयाका दर्शन करके मुग्ध होना चाहिये। फिर प्रभुके प्रकट होनेमें विलम्बका काम नहीं है।

५५. दुःख-सुख जो भी प्राप्त हो उसमें परमात्माकी दयाका दर्शन करना चाहिये। प्रभुके प्रत्येक विधानमें सदा प्रसन्न रहना चाहिये। हम रूठें तो भगवान्‌की शरण कैसे।

५६. दूसरोंकी निन्दा करना, सोना याने आलस्यमें समय बिताना खानसे रत्नकी जगह कोयला निकालना है। हमलोगोंको रत्न निकालना चाहिये।

५७. ईश्वरको याद रखना चाहिये और उनकी आज्ञाका पालन करना चाहिये।

५८. यह शरीर जानेवाला है, जो इसका तत्त्व समझ जायेगा वह फिर पाँच मिनट भी इसे दूसरे काममें कैसे लगायेगा।

५९. शरीर-पोषणका नाम उन्नति नहीं है, धन कमानेका नाम उन्नति नहीं है, भोग भोगनेमें भी उन्नति नहीं है, सच्चा धन परमात्मप्राप्ति कमानेमें समय लगानेका नाम उन्नति है।

६०. मेरी कही हुई बातोंको धारण करनेसे कल्याण हो सकता है। धारण करना आपका काम है, कहनेका मेरा काम है। जो लोग धारण कर लें, उनकी मेरे ऊपर दया है, मैं उनका ऋणी हूँ।

६१. महापुरुषके नेत्र पवित्र हैं, उनका चिन्तन करनेसे मन पवित्र हो जाता है, उनकी चरण-धूलि डालनेसे शरीर पवित्र हो जाता है, सब कुछ पवित्र हो जाता है।

६२. भगवान् कहते हैं—मेरे भक्तजन मेरी कथा कहते हैं, मेरी गीताका प्रचार करते हैं, उनके समान त्रिलोकीमें मेरा कोई भी नहीं है।

६३. जिन पुरुषोंने परमात्माकी प्राप्ति कर ली, उन्होंने सब कुछ पा लिया। सारी त्रिलोकीका सुख उनके एक उस सुखके रोमके समान भी नहीं है।

६४. जहाँ महापुरुषोंकी दृष्टि पड़ती है, वहाँकी भूमि पवित्र हो जाती है। उनके सम्मुख पापबुद्धि उत्पन्न नहीं होती, यदि हो भी जाय तो ठहर नहीं सकती, यदि वह भाई डर भी जाय तो भी वह पाप नहीं कर सकता।

६५. समय बहुत दामी है, समय चला जायेगा तो सदाके लिये रोना ही पड़ेगा।

६६. भगवान्‌की स्मृति रहनेका उपाय—

१. मृत्युको हर समय नजदीक देखना चाहिये।

२. उनकी स्मृतिके लिये नामजप बहुत मदद करनेवाला है।

३. प्राणोंसे बढ़कर भजनको समझना चाहिये।

६७. इस प्रकार याद रखनेसे कल्याण हो सकता है—

सर्वशक्तिमान् भगवान् अवश्य हैं, सर्वगुणसम्पन्न हैं, निराकाररूपसे भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है। जलमें जैसे रस है, उसी प्रकार संसारमें भगवान्‌के सिवाय कुछ नहीं है, भगवान् चैतन्य हैं, सब जगह हैं।

६८. गृहस्थके धर्म—

१. पहले उठकर परमात्माको याद करना चाहिये।
२. पृथ्वीको नमस्कार करना चाहिये।
३. माता-पिताको नमस्कार करना चाहिये, यदि उस समय माता-पिता न उठे हुए हों तो स्नान करके उनको नमस्कार करें।
४. हवन करना चाहिये।
५. उत्तम सन्ध्या वह है जो सूर्योदयके पूर्व की जाय। दोपहरकी सन्ध्या न कर सको तो कोई बात नहीं, सायंकालकी सन्ध्या अवश्य करनी चाहिये, सूर्यास्तके पूर्व सायंकालीन सन्ध्या उत्तम है।
६. यज्ञोपवीतधारीको गायत्री-जप अवश्य करना चाहिये, संसारमें गायत्री-मन्त्रके समान कोई मन्त्र नहीं है। बीमार अवस्थामें या सूतकमें मानसिक जप कर लेना चाहिये।
७. अपवित्र अवस्थामें भी मानसिक नित्यकर्म कर लेना चाहिये।
८. गीताकी एक अध्यायका अर्थसहित पाठ करना चाहिये।
९. मनुस्मृतिका पाठ करना चाहिये।
१०. भगवान‍्की मूर्तिकी पूजा करे, उत्तम है कि मानसिक पूजा करे। हे नाथ! आपके सिवाय मेरा कोई आधार नहीं है, आप क्यों मेरा उद्धार नहीं करते हैं। ईश्वर दयालु हैं, पतितपावन हैं, मेरी आवाजको अवश्य सुनेंगे।
११. तर्पण करे, फिर भगवान‍्का ध्यान करे।
१२. भोजनके समय बलिवैश्वदेव अवश्य करना चाहिये।
१३. भगवान‍्के भोग लगा देवें। अतिथि, बालक, रोगी, वृद्ध, गर्भिणी इनको पहले भोजन कराकर पीछे आप भोजन

करें। यज्ञसे बचे हुए अन्नको खानेवाले अमृत खाते हैं। बचाकर रखा हुआ अन्न विषके समान है।

१४. हाथ, पैर धोकर सन्ध्या करें, म्लेच्छोंसे स्पर्श हो जाय तो स्नान करके सन्ध्या करें। गायत्रीकी माला एक घंटामें सात-आठ हो सकती है। इससे तीन वर्षमें सब पापोंका नाश हो जाता है।

६९. सोते समय, उठते समय भगवत्स्मरण, गीता, गजेन्द्रमोक्षका पाठ करना चाहिये।

७०. नामजप नामीका ध्यान करते हुए करना चाहिये।

७१. अपने जो काम करें प्रेमसे, सावधानीसे करें। ऐसा करनेसे पचास वर्षके अभ्याससे जो लाभ हुआ है, वह छः महीनेमें हो सकता है।

७२. यदि गीताका पाठ करनेमें आप पन्द्रह मिनट लगाते हैं, उसका सुधार करें। पचास वर्षमें जो लाभ नहीं हो सका वह एक महीनेमें हो सकता है। हजार गुना लाभ है, कैसे? पाठ करते समय अर्थपर ध्यान दीजिये।

७३. किसी आदमीको अपने ऊपर क्रोध आवे तो उसमें हेतु देखना चाहिये कि मेरे ही कारणसे तो इनको क्रोध आया है, मेरी ही गलती है। किसीके उद्वेगमें हम हेतु बनते हैं तो अपने दोषोंकी तरफ देखना चाहिये।

७४. महत्-दयाका फल ही परमात्माकी प्राप्ति है।

७५. अपनी आत्माके उद्धारके लिये विशेष समयकी जरूरत नहीं है, अपना पेट भरनेके लिये विशेष परिश्रमकी जरूरत नहीं है, जो सबके साथ ही अपना कल्याण चाहता है, वही महापुरुष है।

७६. घरमें दूसरी स्त्रियाँ आवें, उनके साथ व्यर्थकी बातें नहीं करनी चाहिये। उनके साथ भगवत्प्रेमकी तथा भगवत्-सम्बन्धी बात ही करनी चाहिये।

७७. घरका काम प्रेमपूर्वक करना चाहिये, बेगार नहीं समझनी चाहिये।

७८. दूसरेकी उन्नति देखकर जलना परमात्माकी प्राप्तिमें बहुत घातक है। इस दोषके नाशके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करनी चाहिये।

७९. हमलोगोंमें जो अकर्मण्यता है, कमकसपना है, यही हमारी मुक्तिमें रोड़ा (बाधा) है।

८०. आजतक परमात्माके दर्शन नहीं होनेमें प्रधान कारण यह है कि महापुरुषोंके वचनोंपर विश्वास करके लगते नहीं। उनकी कृपासे चाहे सो हो सकता है। भगवान् कहते हैं—मेरे भक्तोंका कभी पतन नहीं होता।

८१. हमलोग निमित्तमात्र बन जायँ तो तुरन्त कार्य सिद्ध हो जायेगा।

८२. संसारमें अनायास जो कुछ हो रहा है, उसमें पद-पदपर प्रत्येक क्रियामें भगवान्‌की दया देखनी चाहिये, सबमें भगवान्‌की दया भरी हुई है।

८३. अनुकूलमें दया, प्रतिकूलमें भी दया सबमें भगवान्‌की दया भरी हुई है।

८४. कोई लाभ हो तो दया, हानि हो तो भी दया समझें। लौकिक सुखवाली दया इनमें नहीं माननी चाहिये। इन सब चीजोंकी सहूलियतका यह मतलब है कि हम जल्दी भगवान्‌के पास पहुँच जायँ। शरीरकी आरोग्यताके लिये हमलोग दूसरे काममें शरीरको लगाते हैं वह दयाका दुरुपयोग है।

८५. भगवान्‌की दया गुप्तरूपसे भरी हुई है, परन्तु पशु-जैसी प्रकृतिवाले मनुष्य उसको समझते नहीं, उसी प्रकार वे लोग

जानवरके समान ही हैं जो भगवान्‌की दयाको नहीं समझते।

८६. रुपया (धन, सम्पत्ति) बढ़ाना तो जलकर मरना है।

८७. अपना समय व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये, एक मिनट भी व्यर्थ गया तो पुत्रशोकसे बढ़कर समझे।

८८. भक्तिकी पुस्तकोंका नियमपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये।

८९. करुणा-भावसे भगवान्‌के आगे रोना चाहिये।

९०. मनुष्य-शरीरको पाकर अपना काम बनानेके पूर्व दूसरे कामकी चेष्टा करनी गलेमें फाँसी लगाकर मरना है। इस प्रकारका मनुष्य-जन्म तथा ऐसा संग फिर लाखों, करोड़ों वर्षोंमें भी मिलना मुश्किल है, युगों-युगोंमें मिलना मुश्किल है, यदि हिसाब लगाया जाय तो कई लाख युगके बाद भी मनुष्य-शरीर मिलना मुश्किल है।

९१. इतने महत्त्वका शरीर पाकर भगवान्‌को छोड़कर दूसरे काममें समय बिताना महामूर्खता है।

९२. मेरेको जिस तरह आप प्रत्यक्षमें बैठे हुए दीखते हैं, उसी तरह रुपयोंका बुरा नतीजा मुझे मनसे प्रत्यक्ष दीख रहा है।

९३. भजन-साधन खूब जोरसे करना चाहिये, हर वक्त भजन, ध्यान करता ही रहे।

९४. भगवान्‌की स्मृति रहते हुए ही सब काम करना चाहिये।

९५. पुस्तक-प्रचारका काम बड़ी सेवा है। इससे भी ज्यादा बढ़िया भजन, ध्यान है।

९६. काम करते हुए अथवा एकान्तमें ज्यादा समय भजन, ध्यानमें बिताना चाहिये।

९७. भजन, ध्यान सात्त्विक है, व्यापार राजसी है, आलस्य तामसी है, इसलिये आलस्यमें समय नहीं बिताना चाहिये।

९८. झूठ, कपट, कड़ाईका व्यवहार नहीं करना चाहिये।
९९. व्यापारमें विषमताका दोष छोड़ें। इसका भाव यह है कि एक चतुर आदमीको कम दाममें देना, भोलेको ठगना यह विषमता है। यह दोष नहीं आना चाहिये। एक आदमी हमारेसे कसकर एक आना कममें ले गया, भोला आदमी एक आना ज्यादामें ले गया, यह हमारे लिये विषमता है।
१००. हमारेपर कोई विश्वास करे, उससे हम कुछ लाभ उठा लेते हैं यह विषमता है।
१०१. शास्त्रनिषिद्ध वस्तुओंका बिलकुल ही व्यवहार न करें।
१०२. रुपये बढ़ानेकी इच्छामें सब दोष भरे पड़े हैं।
१०३. जिसके पास रुपया है, वह रुपया बढ़ानेकी इच्छा रखता है तो वह गलेमें फाँसी लेकर मरना है। बिना इच्छा यदि बढ़ जाय तो कोई विशेष नुकसान नहीं।
१०४. रुपया बढ़ानेकी इच्छा है वह दलदलमें फँसकर मरना है।
१०५. व्यवहारमें काम सामने आवे तो कर दो, परन्तु भगवान्‌की स्मृतिमें भूल नहीं हो, इसके लिये तत्परतासे चेष्टा करनी चाहिये।
१०६. यदि निरन्तर भगवान्‌की स्मृति रहे तो वह तो दूसरोंको सत्संगका लाभ देनेवाली है।
१०७. यही लक्ष्य रखे कि मुझे तो जल्दी ही भगवत्प्राप्तिके साधनमें लगना है।
१०८. ऋण करके सत्संग नहीं करना चाहिये।
१०९. ऋण बढ़ाकर सत्संग नहीं करना चाहिये।
११०. जप संख्यासे करे तथा चलते-फिरते, उठते भी करे। जपके बराबर कोई चीज नहीं है, इससे बढ़कर ध्यान है।

१११. अपशब्द—जैसे साला आदि इनका प्रयोग न करें।

११२. अहंकारका यानी मालिकीका शब्द निकल जाय तो ध्यान रखना चाहिये ताकि फिर ऐसी भूल न हो।

११३. घरवालोंके साथ बहुत त्यागका व्यवहार करे।

११४. भगवान्‌का भजन करते हुए, व्यवहार करते हुए भगवान्‌को साथमें समझें। भगवान्‌की आज्ञानुसार व्यवहार करें, रुपयोंके लिये नहीं।

११५. रुपया जबरदस्ती बढ़ता है, यदि हम चाहेंगे तो नहीं बढ़ेगा। रुपया और बढ़े ऐसा हम नहीं चाहते हैं ऐसे व्यक्तिके यदि बिना चाहे रुपया बढ़ रहा है, उसकी भी रुपयोंमें आसक्ति ही तो है।

११६. रुपयोंकी आसक्ति अपने लिये बहुत खतरनाक है।

११७. घंटा-दो-घंटा नियमित रूपसे भजन करें। माला चौदह या और ज्यादा फेरें। चलते, उठते और बैठते भगवान्‌का स्मरण करें।
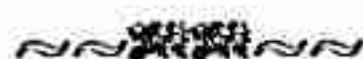
सत्संगकी बहुमूल्य बातें

१. एक ही तत्त्वचिन्तामणि पुस्तकसे भगवान् सबकी बुद्धि बदल देते हैं।

२. एकान्तमें बैठकर भगवान्से यही प्रार्थना करो कि सबका उद्धार कर दें। मेरी तो ऐसी सामर्थ्य नहीं है, आप चाहें उसे निमित्त बना सकते हैं। आपलोग निमित्तमात्र बन जायँ, प्राणपर्यन्त चेष्टा करें।

३. अपनी शक्ति स्वीकार कर लेनी चाहिये। भगवान् तो कह रहे हैं कि आप अपनी शक्तिको स्वीकार कर लें।

४. हमें यह धारणा कर लेनी चाहिये कि कुछ भी असंभव नहीं है।

५. श्रद्धा-शक्ति न माननेमें घाटा है तथा महात्मा-ईश्वरकी दया-प्रेम न माननेमें ही घाटा है।

६. श्रीचक्रधरजीका कथन—बुद्धिके द्वारा ऐसा ही प्रतीत होता है एवं अन्त:करणमें बार-बार यही भाव उठते हैं कि आप जैसा करनेके लिये कहते हैं एवं जो कहते हैं, वही भगवान्को अभिप्रेत है। मैं वही करना चाहता भी हूँ, किन्तु अभिमान एवं श्रद्धाकी कमी आदिके कारण ऐसा नहीं हो पाता।

उत्तर—अभिमान मानना ही नहीं चाहिये। श्रद्धाकी कमी माननी ही नहीं चाहिये। हम श्रद्धा कम मानें ही क्यों, श्रद्धा कम मानना तो हिम्मत हारना है।

अहंकार मानें ही क्यों? माननेके कारण ही अहंकार तंग करता है।

कोई भी जोरका काम हो तो मरनेके लिये तैयार रहे। ये सारी बातें प्रेमके नाते हैं, विशेष अवसरकी बात है, डरनेकी बात बिलकुल नहीं है।

७. निमित्तमात्र माननेवालोंको अपने बलकी आवश्यकता नहीं होती।

८. भगवान्‌की दया तो सबपर है ही। माननेवालेको प्रत्यक्ष फल होता है, यही बात महात्मामें है। माननेपर प्रत्यक्ष आनन्द होता है प्रसन्नता नहीं हो रही है तो दया मानी ही नहीं।

९. भगवान्‌का सबपर प्रेम है, जो माने उसे ही प्रसन्नता होती है। यही बात महात्माकी है। हमें तो हर वक्त प्रसन्न, मुग्ध रहना चाहिये। भगवान्‌के आनेसे मुक्ति स्वतः हो जायगी, हम किसी बातकी इच्छा ही क्यों करें।

१०. श्रद्धा बढ़नेका उपाय—श्रद्धालु पुरुषोंका संग करनेसे श्रद्धा बढ़ती है। निष्काम कर्म करनेपर अन्तःकरण शुद्ध होनेपर श्रद्धा बढ़ती है। जिसमें श्रद्धा करनी हो उसके गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यकी बातें सुननेसे श्रद्धा बढ़ती है। महात्मा पुरुष हो और श्रद्धा भी पूरी हो तो फिर देरी नहीं हो सकती। ऐसा होनेपर फिर परमात्माकी प्राप्तिमें विलम्ब नहीं हो सकता।

११. जिस महात्मामें श्रद्धा हो जाय उसकी बात-बातमें श्रद्धालु पुरुषोंको कल्याण-ही-कल्याण दिखायी पड़ता है। तुरन्त ही उनको विश्वास हो जाता है। श्रद्धाके कारण आनन्दकी सीमा नहीं रहती। उनके आनन्दका क्या ठिकाना है।

१२. श्रद्धाकी बात—

१. अपनेको जन्म देनेवाली माँको कोई मार सकता है क्या? श्रद्धासे मार सकता है। पिताके वचनमें परशुरामजीकी श्रद्धा थी इसी कारण उन्होंने अपनी माँको मार दिया।

२. साधुके वचनपर मयूरध्वज अपनी स्त्रीके साथ मिलकर अपने पुत्रको चीरता है।

अब तो इतनी बात है ही नहीं, शास्त्रके अनुकूल बातको कहनेपर भी लोग कहाँ मानते हैं।

१३. हर समय भगवान्‌को याद रखना चाहिये।

१४. अपनेपर भगवान्‌की बड़ी भारी दया समझकर हर समय प्रसन्न रहना चाहिये।

१५. स्त्री, पुत्र, धन कोई भी चीज साथ जानेवाली नहीं है, इसलिये काम या लोभके वशीभूत होकर कभी पाप नहीं करना चाहिये।

१६. काल अचानक आकर मारता है, इसलिये शरीर मिट्टीमें मिलनेके पहले-पहले ही अपना काम बना लेना चाहिये।

१७. आलस्य, प्रमाद और भोगको मृत्युके स्थान समझकर एकदम त्याग देना चाहिये।

१८. उत्तम गुण, उत्तम आचरण और ईश्वरकी भक्तिको अमृतके समान समझकर इनका सेवन करना चाहिये।

१९. परोपकारको ही सच्चा धन समझकर अनाथ एवं दुःखी जीवोंकी सेवा करनी चाहिये।

२०. नियमपूर्वक सत्संग-भजन करना चाहिये, यदि सत्संग न मिले तो धार्मिक पुस्तकें पढ़नी चाहिये। पुस्तकोंका अभ्यास भी सत्संगके समान है।

२१. बर्फमें जैसे जल परिपूर्ण दीखता है इसी प्रकार ईश्वरको सर्वत्र अनुभव करनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

२२. प्राण भी जायँ तब भी मिथ्या वचन कभी नहीं बोलना चाहिये।

२३. भगवान्‌में दया, ज्ञान, समता ये सब अपरिमित हैं। जैसे

बिजलीका सारा पावर, कम्पनीके पावर हाऊससे आता है ऐसे ही जिस किसीमें दया प्रतीत हो, वह उसी दयामयसे आती है।

२४. भगवान् जो कुछ करते हैं उसमें उनकी दया भरी है। उनकी स्मृति होनेमें उनकी दया ही हेतु है।

२५. मनके विपरीत जितनी बातें होती हैं सब भगवान् करते हैं, दूसरा कोई नहीं कर सकता। मनके विपरीत होनेसे दुःख होता है। दुःखकी परिस्थिति प्रारब्धका फल है। भगवान्के सिवाय दूसरा कौन फल भुगताता है। प्रतिकूलताकी प्राप्तिमें क्लेश होगा तो बड़ी हानि होगी।

२६. भगवान्के भक्त तो भगवान्की प्रसन्नतामें ही प्रसन्न होते हैं, मनके विपरीत कार्य परम दयालु परम दया करके हमारे हितके लिये करते हैं।

२७. भगवान्से कुछ भी नहीं माँगना चाहिये इससे भी बढ़कर यह बात है कि सबका कल्याण कर दें। उनसे तो माँगना ही मूर्खता है। सबके कल्याणके लिये प्रार्थना करनी उदारता है। माँगनेका तात्पर्य है अपने लिये माँगना। प्रार्थना करनेका मतलब है सबके लिये माँगना।

२८. दर्शन तो ऐसा करना चाहिये कि फिर छूटे ही नहीं। करना अपने सहारेकी बात है छोड़ना आपके सहारे नहीं है। छोड़ दे वहाँ दर्शन वास्तवमें हुआ ही नहीं।

२९. प्रेम बढ़नेका उपाय—वाणीसे प्यारा वचन, मनसे हित-चिन्तन, शरीरसे सबकी सेवा यह बातें मनुष्य धारण कर ले तो सारी दुनियामें प्रेम हो जाय। यदि यह प्रेम निष्काम हो जाय, हेतुरहित हो जाय तो तुरन्त सबको भगवान् मिल जायँ।

बस भगवान्‌से यही कहना चाहिये कि आपका वैकुण्ठ हमको नहीं चाहिये। हमको तो सब दुनिया वैकुण्ठ हो जाय ऐसा चाहिये, यदि ऐसा नहीं हो तो मैं जहाँ जाऊँ, जहाँ रहूँ, वहाँ मुझे वैकुण्ठ दीखे। भगवन्! यही प्रार्थना है कि मैं पातालमें, नरकमें कहीं भी रहूँ, मुझे तो बस यही प्रयोजन है कि सर्वत्र आनन्दमय हो जाय और कुछ नहीं, बस हम तुमको सदा सबमें देखा करें, यह निश्चय रहे। तुम भले ही आँखोंसे मत दीखो, पर बुद्धिमें तो तुम बने ही रहो। तुम यदि वैकुण्ठमें नहीं रह सको तो मत रहो, निरन्तर आपके गुणानुवादमें हमारा समय बीते। प्रभु! आपके प्रेमके प्रभावकी बातें होती रहें और हम सुना करें, हमारा जीवन बीतता रहे, जहाँ जावें वहीं सुननेको मिले तो बस गीताके इस श्लोकके अनुसार बना दो।

मच्चित्ता मद्गतप्राणा बोधयन्तः परस्परम्।
कथयन्तश्च मां नित्यं तुष्यन्ति च रमन्ति च॥

(गीता १०। ९)

निरन्तर मुझमें मन लगानेवाले और मुझमें ही प्राणोंको अर्पण करनेवाले भक्तजन मेरी भक्तिकी चर्चाके द्वारा आपसमें मेरे प्रभावको जनाते हुए तथा गुण और प्रभावसहित मेरा कथन करते हुए ही निरन्तर सन्तुष्ट होते हैं और मुझ वासुदेवमें ही निरन्तर रमण करते हैं।

बस यही चाहिये, इसके सिवा और तुम्हारी चीजें तुम्हारे पास रखो। भगवन्! बस ऐसा खेल हो कि तुम भी वशीभूत हो जाओ और तुमको कुछ भी नहीं सुहावे, बस यही चाहिये।

—इसी पुस्तकसे